॥રામ॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

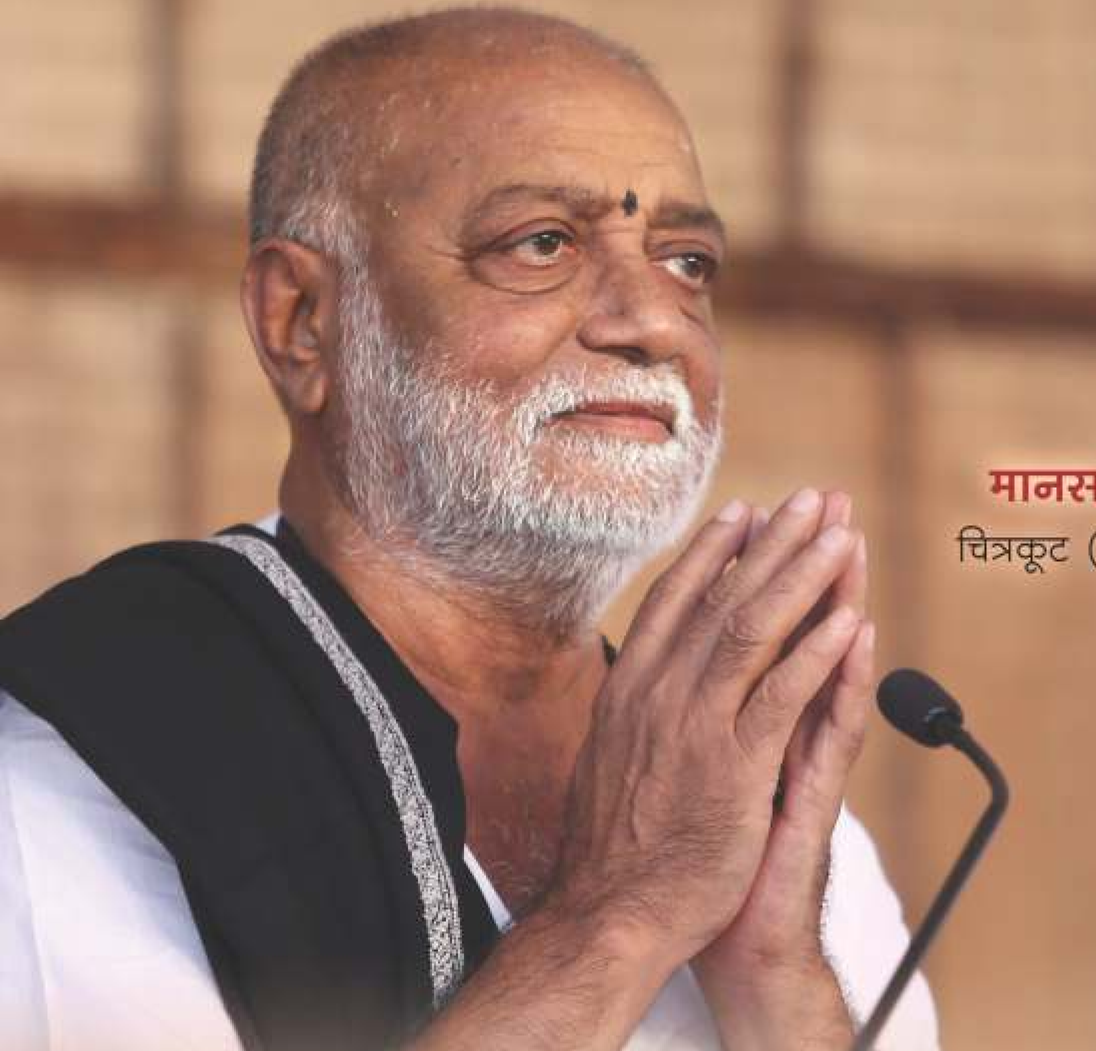

मानस-भरत

चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।।

।। रामकथा ।।

मानस-भरत

मोरारिबापू

चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

दिनांक : २१-५-२०१६ से २९-५-२०१६

कथा-क्रमांक : ७९५

प्रकाशन :

दिसम्बर, २०१७

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)

www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा

nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति संपर्क-सूत्र :

ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स

स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने चित्रकूट (मध्यप्रदेश) की परमपावन भूमि में दिनांक २१-५-२०१६ से २९-५-२०१६ के दरमियान में रामकथा का गान किया। चित्रकूट में गाई इस रामकथा में बापू ने सिद्धों की भूमि से भी ज्यादा शुद्धों की भूमि के रूप में चित्रकूट का महिमागान किया और चित्रकूट का परिचय इन शब्दों में दिया, 'चित्रकूट विहारभूमि है, विरागभूमि है, विवेकभूमि है, विश्वास की भूमि है और वियोग की भूमि है। यह प्रभु की विहारभूमि है। साधकों के लिए यह विरागभूमि है। भगवान वशिष्ठ, राजर्षि जनक, परमहंस भरत, मुनिगण आदि की यह विवेकभूमि है। यह विश्वास की भूमि है। और यह वियोग की भूमि है। यद्यपि यहां राम-भरत का मिलन हुआ है, सबका मिलन हुआ है लेकिन तत्त्वतः यह आंसू और विग्रह की भूमि है।'

बापू ने चित्रकूट को 'रामचरित मानस' की राजधानी का दर्जा देते हुए ऐसा भी कहा कि ''चित्रकूट 'रामचरित मानस' की तो राजधानी है। यहां 'रामचरित मानस' का शासन है। चित्रकूट में रामकथा की महिमा जितनी हो उतनी कहां हो सकती है? काशी में है अवश्य लेकिन वहां पांडित्यसभर 'रामचरित मानस' है। आंसूसभर 'रामचरित मानस' तो केवल चित्रकूट में है। अयोध्या में है तो वो बौद्धिक 'रामचरित मानस' है। ध्यान देना, अयोध्या और जनकपुर दोनों बुद्धि का प्रदेश है। दंडकारण्य और पंचवटी मन का प्रदेश है। लंका अहंकार का प्रदेश है। चित्रकूट चित्त का प्रदेश है।''

'मानस-भरत' पर केन्द्रित हुई इस कथा अंतर्गत बापू ने भरतजी के आंतर्व्यक्तित्व को उजागर किया एवं भरतजी के धर्मदर्शन, अर्थदर्शन, कामदर्शन और मोक्षदर्शन को भी विशिष्ट ढंग से उद्घाटित किया। भरतजी के धर्मदर्शन में सत्यव्रत, मौनव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, अयाचकव्रत और प्रेमव्रत जैसे भरतजी के पांच विषम व्रत की बापू ने चर्चा की। भरतजी ने अयोध्या की संतुलित अर्थव्यवस्था की थी इसका निर्देश बापू ने किया, साथ ही ऐसा जिक्र भी किया कि अर्थदर्शन मानी बुद्धपुरुष द्वारा हमें जीवन का अर्थ प्राप्त हो जाए। कामदर्शन के बारे में बापू का कहना हुआ कि भरतजी काम को नहीं चाहते और रति को जनमजनम चाहते हैं। और मोक्षदर्शन के बारे में बापू ने निवेदन किया कि 'राम भजत सोइ मुक्ति गोसाई।' कहनेवाले भरतजी ने निर्वाणपद का इन्कार किया है। भरत का दर्शन मोक्षवादी नहीं है। भरत कहते हैं, भजन करो ये सबसे बड़ा मोक्ष है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दर्शन उपरांत बापू ने भरतजी के सत्यदर्शन, प्रेमदर्शन और करुणादर्शन के संदर्भ में भी अपने निजी विचार प्रकट किये।

चित्रकूट की कथा में बापू की अखंड श्रद्धा का एहसास भी हुआ। कथा के पांचवे दिन हुए हादसा को बापू ने हकारात्मक दृष्टि से देखा और कहा, ''हम सबने कल परमात्मा की अहेतु और विशेष कृपा का अनुभव किया। 'अति विचित्र भगवंत गति।' उसमें किसी की बुद्धि काम नहीं कर सकती। लेकिन मुझे बड़ी प्रसन्नता यह है कि इतनी किलोमिटर की स्पीड से आंधी-तूफान और बारिश हुई, यह मंडप क्षतिग्रस्त होता चला फिर भी किसी को कुछ भी नहीं हुआ! यही है भगवान की विशेष कृपा का अनुभव चित्रकूट में।''

– नीतिन वडगामा

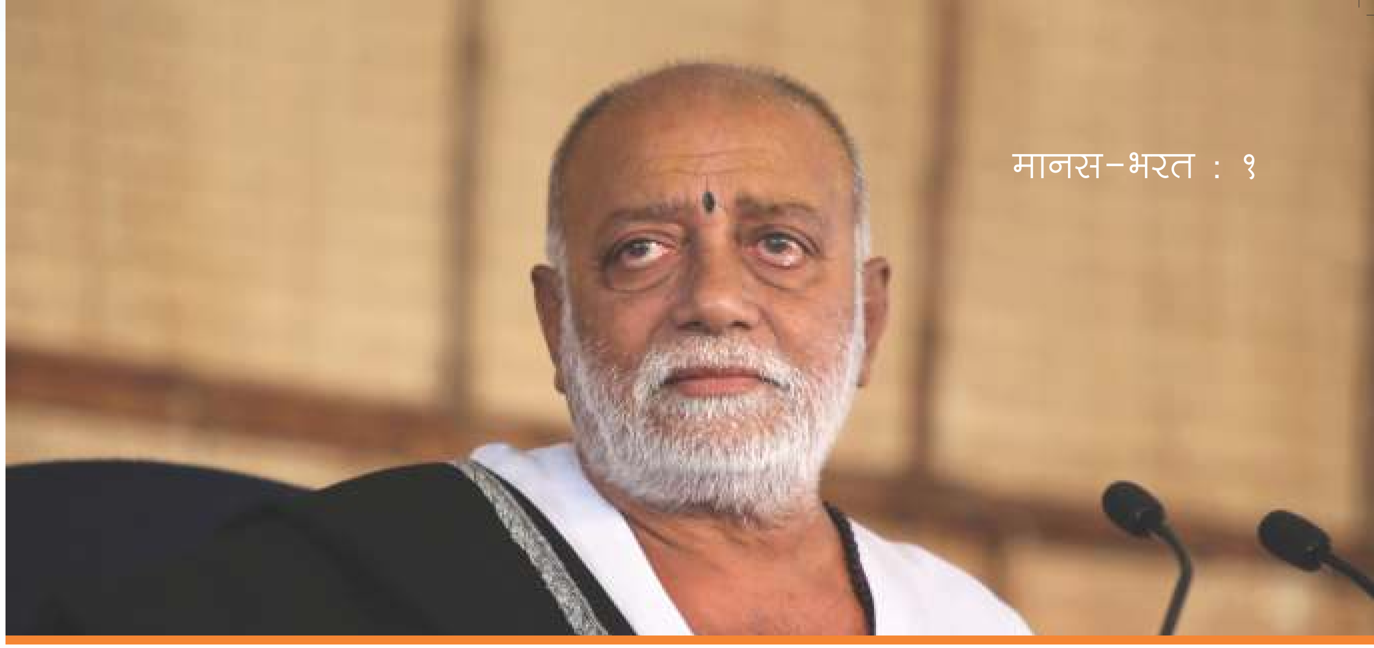

चित्रकूट विहारभूमि है, विरागभूमि है, विवेकभूमि है, विश्वास की भूमि है, वियोग की भूमि है

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।।

बाप! परमात्मा की अहेतु और असीम कृपा से फिर एक बार परम पावन तीर्थक्षेत्र चित्रकूटधाम में भगवान राम की कथा गाने का मंगल अवसर प्राप्त हुआ। सबसे पहले मैं इस परमपावन भूमि को प्रणाम करता हूं। यहां की आदिकाल से लेकर 'भए जे अहहिं जे होइहहि आगें।' सभी चेतना को व्यासपीठ से प्रणाम। इस नौ दिवसीय कथा का आयोजन एक परिवार का मनोरथ। मुझे किशन कहता था कि अखिलेश ने सब मुझ पर डाल दिया है कि यह कथा किशन की है। लेकिन न कथा किशन की है, न कथा अखिलेश की है, न मोरारिबापू की है। कथा राम की है। परमात्मा किसी न किसी परिवार को केवल निमित्त बना देते हैं। वो अखिलेश और उसके परिवार का सौभाग्य है। मुझे विशेष खुशी यह होती है जब भगवद्कथा में युवा इतनी रुचि लेने लगते हैं। श्रवण, मनन, स्वाध्याय, 'मानस' का पाठ और आयोजन तक वित्तजा, मानसी, तनुजा सब प्रकार की सेवा में लग जाते हैं तब लगता है, यह बहुत बड़ा सगुन है। भगवद्कृपा से फिर एक बार मुझे अवसर मिला इस परम पवित्र धाम में कथा गाने का। मैं अपनेआप को बहुत भाग्यवान समझता हूं। साधना में निरंतर रत ऐसे हमारे पूजनीय महंतश्री, मैंने सुना था कि आप बाहर आते नहीं, बिलकुल एकान्त में रहते हैं। लेकिन आप पधारे, दीप प्रज्वलित किया। आपने हम सबको अपने आशीर्वचन कहे। मैं आपको प्रणाम करता हूं। मैं सदैव मानता हूं कि नेम न तुड़वा दे तो प्रेम कौन काम का? प्रेम तो वो है जो नेम को तुड़वा भी सकता है। आपने स्वयं कृपा की। 'रामायण' के प्रसिद्ध प्रवक्ता हमारे पंडितजी महाराज के भी अचानक मैंने दर्शन किए तो प्रसन्नता हुई। मैं उमाशंकरजी को भी प्रणाम करता हूं। विधविध क्षेत्र के महानुभावो ने आकर दीप प्रज्वलित किया इन सभी को भी मैं आदर दे रहा हूं। यहां के पूजनीय संतगण सबको मेरा प्रणाम। आप सब मेरे श्रावक भाई-बहन, आप सबको भी मेरा प्रणाम। जय सीयाराम।

तो बाप! मैं सोच रहा था कल चित्रकूट की यात्रा पर निकला तो कि कौन बिंदु को गुरुकृपा से स्पर्श करे और उस पर नौ दिन भगवद्चर्चा करे? तो फिर आज मंदाकिनी में स्नान करते समय मन में यह भाव उठा कि इस रामकथा में हम सब मिलकर भरतजी के जीवन का दर्शन करें। भरतचरित्र तो अगाध है। तुलसीदासजी तो 'अयोध्याकांड' के समापन में गा उठे कि -

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।।

यह विषय गंभीर तो रहेगा लेकिन आवश्यक भी है कि हम और मिलकर के इस पावन भूमि पर भरतजी के जीवन का कुछ विशेष दर्शन करें। गुरुकृपा से, संतों के आशीर्वाद से, ग्रंथों के अवलोकन से, इस जगत में रामकथा से जिन-जिन महापुरुषों ने अपना जीवन समर्पित किया इन महापुरुषों को सुन-सुन कर जो कुछ अंत:करण की प्रवृत्ति बनी उसके मुताबिक हम और आप नौ दिन तक भरतजी को केन्द्र में रखकर भरतजी का दर्शन करेंगे। हर एक एंगल से श्री भरतजी का हम दर्शन करेंगे। मन में यह भाव उठा कि इस कथा का विषय हम 'मानस-भरत' रखें। दो पंक्तियां जो चौपाई की है वो आप सब जानते हैं। वंदना प्रकरण में श्री भरतजी की वंदना पूज्यपाद गोस्वामीजी करते हैं, उसी दो पंक्तियां उठाई है। मुझे माहिती दी गई, इन पंक्तियां पर सबसे पहले या पहली और दूसरी कथा भरतचरित्र पर हुई है। लेकिन 'रामचरित मानस' तो दिने-दिने नवम्-नवम् है। यह तो रोज नया सद्ग्रंथ है। तो गुरुकृपा से भरतजी का दर्शन हम करें इस पावन भूमि पर नौ दिन। तो इसलिए मैंने यह 'मानस-भरत' विषय चुना है।

तो आईए बाप! अवसर मिला है तो 'मानस' को केन्द्र में रखते हुए भरतजी का दर्शन करें। यह भूमि जो है चित्रकूट। क्या कहे इसके लिए? मैं जिस गांव में जन्मा हूं उस गांव में सालों पहले एक कथा आयोजित हुई और फिर कथा के स्थान का नाम क्या रखे? उस समय मेरे मन में पहला जो कथा के स्थान का जो नाम आया वो चित्रकूटधाम आया। फिर हम पूरे तलगाजरडा को चित्रकूट ही कह देते हैं। तो इस भूमि के बारे में ओर क्या कहें? यह सिद्धों की भूमि है इससे भी ज्यादा यह शुद्धों की भूमि है। वर्तमान में हमने जिन-जिन महापुरुषों के दर्शन किए हैं ऐसे कितने ही महापुरुष इस धरती पर रहकर के जगमंगल में अपना योगदान दे चुके हैं। मैं किन-किन महापुरुषों का नाम लूं? परम पूज्य पंजाबी भगवान को स्मरूं। व्यासपीठ के प्रति, रामकथा के प्रति अनहद प्यार जिस महापुरुष का रहा। यहां की एक विभूति रही पूज्य रणछोडदासजी बापू। आपने इस भूमि को विशेष पावन किया और कितनी सेवा प्रवृत्ति की! गोस्वामीजी को चित्रकूट के प्रति कितना प्यार! अपार प्यार, ममता जो कहो, जगविदित है। अपने पदों में, 'मानस' मे तुलसी ने जो पदों का गायन किया है, अद्‌भुत है -

चित्रकूट अतिबिचित्र सुंदर बन महि पवित्र।
पावनि पय सरित सकल मल निकंदिनि।।

कौन गाए महिमा चित्रकूट की? ऐसी पावन भूमि है। हम सब बड़भागी है। तपस्या की भूमि है। मेरी समझ से, मेरे गुरु की कृपा से मुझे जो मिला वो मैं आपको बताऊं। मेरे दादाजी कहा करते थे कि बेटा, चित्रकूट पांच वस्तु की भूमि है। यह केवल मैं चित्रकूट को पांच वस्तु में आबद्ध नहीं करना चाहता हूं। चित्रकूट असीम है, लेकिन हमारी सीमा है, हमारी मर्यादा है। हमारी सोच, हमारी समझ, हम कितना कर सकें इसकी मर्यादा है। हमें कबूल करना चाहिए क्योंकि हम जीव है, जंतु है। यह चित्रकूट भूमि असीम है, लेकिन पांच चीजों में हम यदि देखना चाहे इस भूमि को तो ऐसी समझ बनी भगवद्‌कृपा से और संतों से सुनकर; अभी-अभी पूज्य महाराजश्री ने भी थोड़ा जिक्र कर दिया; भगवान सीतारामजी की यह विहारभूमि है। इतनी साल तक ठाकुर यहां निवास करते रहे। यह चित्रकूट प्रभु की विहारभूमि है। लेकिन प्रभु के लिए यह विहारभूमि है, साधकों के लिए यह विरागभूमि है। कहीं कोई इस विहार से गलत प्रेरणा न उठा ले। साधकों के लिए यह विरागभूमि है। यहां से आदमी को सहज विराग प्राप्त होता है। मेरे गोस्वामीजी भरत की स्मृति में, स्वयं भरत का स्मरण करते हुए बोले हैं -

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति।।

यह विरति की भूमि है, विराग की भूमि है। यह दूसरा महत्त्व का यहां का माहात्म्य है। तीसरा, भगवान वशिष्ठ, राजर्षि जनक, परमहंस भरत, मुनिगण आदि-आदि की यह विवेकभूमि है। यहां विवेक प्रगटा। हम सबके लिए तो है यह प्रभु की विहारभूमि। परमात्मा में प्रीत जुड़ जाए तो अवश्य विराग प्राप्त हो जाए ऐसी यह विरागभूमि है। तीसरी वस्तु, यह विवेकभूमि है। चौथी, मुझे कहने दो यह विश्वास की भूमि है। यहां जिसका विश्वास दृढ़ न हुआ तो फिर मुझे खबर नहीं हो सकेगा कि नहीं! पांचवां और अंतिम सूत्र, यह वियोग की भूमि है। यद्यपि यहां राम-भरत का मिलन हुआ है; सबका मिलन हुआ है लेकिन तत्त्वत: यह आंसू और विग्रह की भूमि है। जब भरतजी यहां से बिदा लेते हैं पादुका को शिरोधार्य करके तब आप कथा में देखते हैं, सुनते हैं, राम, लक्ष्मण और जानकी की जो स्थिति का जो वर्णन है, इनकी वियोग की स्थिति का जो वर्णन है! जब-जब प्रभु को यह स्मृति हुई है, इसमें जब भरत की स्मृति की बात आती है तब तो वियोग की पराकाष्ठा होती है। कहने में कोई आपत्ति नहीं हो रही है मुझे गुरुकृपा से कि यह वियोग की भूमि है। याद रखिएगा मेरे श्रावक भाई-बहन, यह विहार की भूमि है। यह विराग की भूमि है। यह विवेक-विचार की भूमि है। यहां बहुत विचार विनिमय हुआ। और यह विश्वास की भूमि है। काश! इन नौ दिनों में हम में यह विशेष रूप में प्रकट हो और हम भरत के दर्शन से कुछ बदलकर यहां से जाए, परमात्मा करे।

बाप! जिन दो पंक्तियों का आश्रय मेरी व्यासपीठ ने इस कथा में किया है, बहुत प्रसिद्ध है। आप जानते हैं, 'रामचरित मानस' का प्रथम सोपान 'बालकांड', उसमें सप्तमंत्रों में जो मंगलाचरण, मंगल उच्चारण हुआ है उसके बाद पांच सोरठे तुलसीदासजी ने लिखे हैं। उसमें भी किसी के चरण की वंदना गोस्वामीजी स्पष्ट रूप में नहीं करते हैं। किसी को कहते हैं, अनुग्रह करो; किसी को कहते हैं, यह हो, यह हो। लेकिन चरण की वंदना जब गोस्वामीजी ने शुरू की तब 'बंदऊ गुरु पद कंज', गुरु के चरणों की वंदना गोस्वामीजी ने सबसे पहले की। गुरुचरणरज से नेत्र को पवित्र करके पूरी सृष्टि की वंदना शुरू की गोस्वामीजी ने। तो गुरुचरण के बाद एक दूसरे चरण की वंदना गोस्वामीजी ने शुरू की और वो है, 'प्रनवउ प्रथम महिसूर चरना।' चरण की वंदना सबसे पहले करने लगे तो पहला नाम श्री भरतजी का आया। भरत के चरणों की तुलसीजी वंदना करते हैं। और मुझे लगता है कि इस देश ने उसी के चरण पूजे हैं जिसने कोई परमतत्त्व के चरणों में अखंड लुब्धता प्राप्त की हो।

तो यह दो पंक्ति भूमिका के लिए व्यासपीठ ने ली है, इसके आधार पर हम चर्चा करेंगे। इन दोनों मंत्रमयी पंक्तियों का आश्रय करके हम भरतजी के जीवन का दर्शन करेंगे। 'रामचरित मानस' में पांच चरित्रों का अमृत है। हमारी जो परंपरा है उसमें पहले दिन सद्‌ग्रंथ का श्रोताओं को परिचय करा देना अत्यंत आवश्यक है, जो माहात्म्य हो; मेरी मानसिकता ऐसी रही कि ग्रंथ का परिचय कराना यह ग्रंथ से यह मिल जाएगा, यह हो जाएगा; यह तो सब सामान्य वस्तु है। लेकिन यह सामान्य प्रलोभन की बात यहां नहीं है।

मैं युवान भाई-बहनों को कहना चाहूंगा कि क्या आपको नहीं लगता हमारे जीवन में विवेक-विचार की जरूरत है? विचार तो है, विवेक-विचार नहीं है। 'मानस' विवेक-विचार की प्रधानता की ओर हमें संकेत करता है। तो पढ़ी-लिखी दुनिया के लिए विवेक-विचार बहुत जरूरी है। उसका दान 'रामचरित मानस' करती है। हमें सिखाया जाता है कि विश्वास की जरूरत नहीं है। विश्वास अंधा है। 'रामचरित मानस' देखो। विश्वास शंकर है। 'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' और शंकर कभी अंधा नहीं। उसकी पंद्रह-पंद्रह दृष्टि है। विश्वास की पंद्रह आंखें कौन है? पंचदस दृष्टिकोण है साहब! युवानी में विश्वास जरूरी है। अंधविश्वास आदि-आदि मैं भी ना कुबूल करूं लेकिन 'विश्वास' शब्द की जो पिटाई हो रही है बौद्धिक जगत में उसको आगाह करने की जरूरत है। यह अत्यंत आवश्यक है। युवानी को विश्वास की जरूरत है, विवेक-विचार की जरूरत है। युवान लोगों को विहार की जरूरत है। घूमे, आनंद करे, अच्छा खाएं, अच्छे कपड़े पहने। तुलसी ने सब छूट दी है। लेकिन विवेक-विचार होगा तो विहार सुगंधी होगा। चित्त को भ्रष्ट करनेवाला विहार नहीं होगा; चित्त को चलित करनेवाला विहार नहीं होगा; चैतसिक स्खलन करनेवाला विहार नहीं होगा। जरूर है हमारे जीवन में विवेक-विचार की। जरूर है हमारे जीवन में विश्वास की। जरूर है विराग की। विराग का मेरा मतलब है दूसरों के लिए त्याग करने की वृत्ति प्रकट हो जाए कि हम दूसरों के लिए त्यागे, छोड़े। जैसे भरतजी ने राम के प्रति सबकुछ छोड़ा। जरूरत है विरति की, विराग की। इस रूप में विराग की -

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोइ।
जब तव सुमिरन भजन न होइ।।

भजन का वियोग, हरिनाम का विस्मरण, प्रभु की स्मृति हमारी खो जाए इसके समान कोई विपत्ति नहीं बताई 'मानस'कार ने। हमारे यहां संयोग-वियोग की बात आती है तो प्रेमी लोग वियोग को ही पसंद करते हैं। तो इन पांचों तत्त्वों की हमारे में जरूरत है तब 'मानस' यह पूर्ति करता है।

'रामचरित मानस' में पंचामृत है। पांच चरित्र है, जो संतों ने गिनाया है। रामचरित्र तो यह है ही 'रामचरित

मानस।' सीताजी राम से भिन्न नहीं है इसीलिए रामचरित में सीताचरित समाहित है। दूसरा शिवचरित्र और उमाचरित्र। दोनों अभिन्न है। तो एक रामचरित्र, दूसरा शिवचरित्र और उसके बारे में हम आठ दिन उस पर ही केन्द्रित होंगे, भरतचरित्र अद्भुत है, अलौकिक है, अनुभूत है। संसार में रहकर अवधूती प्रदान कर दे ऐसा कोई चरित्र है तो वो है भरतचरित्र। चौथा चरित्र है हनुमंतचरित्र, जो भगवान के सामने जामवंतजी पेश कर देते हैं। पांचवां व्यासपीठ को लगता है अति आवश्यक जिसमें विषयी, साधक, सिद्ध लोगों की सभी समस्याओं का हल मिल जाता है, ऐसा भुशुंडि का चरित्र यह पांचवां चरित्र है।

तो मेरे भाई-बहन, पहले दिन जब सद्ग्रंथ का परिचय देना है विशेष रूप में तब यह सद्ग्रंथ, यह परमशास्त्र है मेरी दृष्टि में। अब मैं 'मानस' गाता हूं तो कई लोगों को यह भी लगे कि बापू जरा बढ़ा-चढ़ाकर कहते

हैं! लेकिन आप जो समझो, आप जानो! लेकिन मैं अनुभव कर रहा हूं, 'रामचरित मानस' यह विश्व की अंतिम व्यवस्था है। कोई ग्रंथि बांधकर बैठ जाए तो उसको कौन समझाए? कोई नया सद्ग्रंथ कोई नए रूप में आ सकता है, लेकिन अब तो हमारे पास विश्व का एक महान सद्ग्रंथ 'रामचरित मानस' है जो मानवी के लिए परिपूर्णता प्रदान कर देता है; परमविश्राम का दान देता है। तो यह पांचों अमृत से भरा 'रामचरित मानस' है। आप सब जानते हैं कि इसमें सात सोपान है। तुलसी सोपान कहते हैं, वाल्मीकिजी कांड कहते हैं। बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका, उत्तर। सात सोपान है, प्रबंध है। आरंभ करते हैं ग्रंथ का गोस्वामीजी तो संस्कृत में सात मंत्रों में। गोस्वामीजी ने सात मंत्रों में मंगलाचरण किया है। यद्यपि मंगलाचरण का तो उच्चारण होता है। लेकिन नाम दिया है मंगल आचरण। वही उच्चारण श्रेष्ठ है जो आचरण में उतर जाता हो वर्ना कोई मंगल उच्चारण का कोई महत्त्व नहीं रहता है। इसीलिए भारत के मनीषियों ने नाम मंगलाचरण किया है। केवल स्मरण कर लें-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

पहले मंत्र में वाणी विनायक की वंदना हुई है। श्रद्धा और विश्वास के घनीभूत स्वरूप शिव और पार्वती की वंदना हुई है। त्रिभुवनगुरु के रूप में भगवान शंकर की वंदना। दो व्यक्ति को तुलसीदासजी ने विशुद्ध वैज्ञानिक माना है। एक वाल्मीकिजी और एक हनुमानजी दोनों वैज्ञानिक है। लेकिन विशुद्ध वैज्ञानिक। विश्व को वैज्ञानिकों की जरूरत है। विज्ञान बहुत आवश्यक है। ज्ञानी से भी मुझे विज्ञानी ज्यादा प्रिय है, ऐसा एक निवेदन प्रभु ने कर दिया। तो विज्ञान बहुत जरूरी है। नई-नई खोज हो विज्ञान की इसलिए वैज्ञानिक भी बहुत जरूरी है। लेकिन तुलसी एक अद्भुत सूत्रपात कर देते हैं कि विशुद्ध विज्ञानी होना चाहिए। विज्ञान विशुद्ध होना चाहिए। 'मानस' के यह दो वैज्ञानिक विशुद्ध वैज्ञानिक है। एक बार भगवदकृपा से एक वैज्ञानिक संस्था में मुझे बोलने का अवसर आया इसरो में; मुझे आनंद यह था कि वो जब आमंत्रण लेकर आए थे कि बापू, आप एक बार वैज्ञानिकों के बीच कुछ बोले। मैंने कहा, मैं अनपढ़ आदमी, मैं वैज्ञानिकों के बीच क्या बोल

सकूं? बोले, आपको आना चाहिए। दबाव डाला। मैंने बोला, क्यों? आना चाहिए मीन्स क्या? तो बोले यह कि बापू, हम वैज्ञानिक है फिर भी हम सब वैज्ञानिक मिलकर प्रति शनिवार को 'सुन्दरकांड' का पाठ करते हैं। मैंने कहा, तो तो मुझे आना ही चाहिए। यह बनी घटना है। मुझे खुशी हुई तो मैं गया। 'सुन्दरकांड' का पाठ पूरा हुआ। आरती हुई। प्रसाद हुआ। सब हुआ। बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग रहे। फिर कुछ कहने कि बात आई तो कहा कि 'मानस' में दो वैज्ञानिक है; वैसे तो कई वैज्ञानिक है। मेरा मनोरथ है, एक बार मुझे 'मानस-विज्ञान' पर बोलना है। मुझे परमात्मा मौका दे, मेरा गुरु मुझे स्पर्श कर दे ज्यादा तो मैं उस पर बोलूं।

तो यह दोनों विशुद्ध वैज्ञानिक है आदि कवि वाल्मीकि और श्री हनुमानजी। आप सोचिए भाई-बहन, जो ऊर्जा, जो शक्ति खो गई है अथवा तो कोई चुरा कर ले गया है। ऊर्जा की खोज वैज्ञानिक के सिवा कोई नहीं कर सकता। केवल भावक आदमी ऊर्जा की खोज नहीं कर सकता। उसके लिए वैज्ञानिक चित्त चाहिए। कहां शक्ति पड़ी है कितनी मात्रा में, वो शक्ति किस वस्तु से आवृत है, उसको कैसे प्रगट करे? भगवान की सेवा में इतने बंदर लगे थे लेकिन जानकी की खोज के लिए हनुमानजी को ही पसंद किया गया। जामवंत ने आह्वान किया। हनुमानजी पर्वताकार हो गए। भगवान ने भी मुद्रिका लेकर हनुमानजी का ही चुनाव कर दिया संकेत में कि तू ही जानकी की खोज कर क्योंकि सीता यह शक्ति है एक अर्थ में, महान ऊर्जा है। जानकी इस परमऊर्जा की खोज वैज्ञानिक के सिवा कोई नहीं कर सकता। विशुद्ध वैज्ञानिक होने के नाते यह काम हनुमानजी को सौंपा गया था कि तू जानकी की खोज कर। वो ही जानकी सगर्भा हुई। लोकापवाद के कारण फिर उसको वनवास हुआ। कई ऋषिमुनि अयोध्या के अगल-बगल में आश्रम रहे होंगे, भगवान राम जानकी का दूसरी बार का वनवास उसमें वाल्मीकि का ही वरण क्यों? वाल्मीकि के आश्रम में ही जानकी को क्यों भेजा गया? इसलिए कि ऊर्जा जब सगर्भ होती है तब किसी वैज्ञानिक के पास ही सुरक्षित होती है। वर्ना कब कोई कैसी बेवकूफी कर दे, विस्फोट कर दे और जगत का विनाश हो जाए। वाल्मीकि जैसे विशुद्ध वैज्ञानिक की सुरक्षा में जानकीजी को सगर्भा स्थिति में रखा गया।

गोस्वामीजी वाल्मीकि और हनुमानजी की वंदना करते हुए खास शब्द जोड़ते हैं, यह विशुद्ध विज्ञानी है। उनको प्रणाम किया। सीतारामजी की वंदना की। और यह सात मंत्रो में आखिर में तुलसीजी ने कह दिया, स्वान्तः सुखाय रघुनाथ की गाथा कहने जा रहा हूं। और संकल्प किया कि उसको भाषा में उतारूं, लोकबोली में ले आउं, ग्राम्यगिरा में उतारूं ताकि आखिरी व्यक्ति तक यह वस्तु पहुंचे। ग्राम्यगिरा में इस ग्रंथ की रचना तुलसीदासजी ने निश्चित की। बड़े-बड़े जितने महापुरुष हुए हैं वो बहुत सामान्य बोली में बोले हैं। तुलसी ने एक बहुत बडी गंगा उतारी धरती पर। श्लोक में मंत्रों की महिमा कौन गा सके साहब! आखिरी आदमी वंचित रह जाता, उपेक्षित रह जाता। उसके लिए तुलसी ने बहुत कृपा की। और इस परमशास्त्र को तुलसी ने लोकबोली में उतारा। पूरे श्लोकों को लोक तक पहुंचाने के लिए देहाती भाषा में उतारा गया। पांच सोरठे लिखे गए।

जो सुमिरत सिधिहोइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।

गणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य भगवान पांचों को सोरठे में याद किया। संतों ने एक भाव यह भी दे दिया कि भगवान शंकराचार्य ने कहा, सनातन धर्मावलंबियों को चाहिए पंचदेव की आराधना करे। गोस्वामीजी तो सेतु कर रहे हैं। सबको जोड़ रहे हैं। इसलिए यहां भी गणेश, शिव, दुर्गा, विष्णु और सूर्य हम पांचों को पूजते हैं। युवान भाई-बहनों को मैं प्रार्थना करूं कि गणेश की पूजा आप करो तो बहुत अच्छी बात है लेकिन गणेश की पूजा मानी अभी मैंने कहा वैसे विवेक का स्वीकार यह गणेशपूजा है। सूर्यपूजा; सूर्य को अर्घ्य अर्पण करो, सूर्यनमस्कार करो, एक्सरसाईज के रूप में भी अच्छा है, लेकिन यदि आप न करो तो उजाले में जीने का संकल्प यह सूर्यपूजा है कि हम प्रकाश में जीएंगे। जहां तक संभव हो हम अंधेरे से बचेंगे। जीवन का पक्ष हम उज्ज्वल रखेंगे यही संकल्प। शिव की पूजा। शिव अभिषेक हम रोज न कर पाए। शिव का अर्थ है कल्याण। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' दूसरों का शुभ हो ऐसा हम सोचेंगे और हमारी क्षमता के अनुसार करेंगे यह हो गया शिव अभिषेक। दुर्गापूजा यानी हमारी श्रद्धा खंडित न हो। श्रद्धा का घात न हो। ऐसे श्रद्धा में जीना। तो गौरीपूजा मानी श्रद्धा को अखंड रखना। विष्णु की पूजा मानी हृदय को विशाल

रखना। बहुत विशालता से सोचना, संकीर्णता न हो। फिर गोस्वामीजी गुरुवंदना से 'रामचरित मानस' का पहला प्रकरण आलेख करते हैं जिसको मेरी व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता' मानती है।

पहला प्रकरण गुरुवंदना का। युवान भाई-बहन, जीवन में कोई चाहिए कि जिसके पास जाकर हमारी ग्लानि दूर हो, जिसके पास हमें हमारे सवाल का जवाब मिले इतना नहीं, हमें हमारे जीवन का समाधान प्राप्त हो। जिसके इर्दगिर्द रहने से हमारी चारों ओर सत्त्व का प्रभाव विस्तरे ऐसे कोई बुद्धपुरुष का आश्रय व्यक्तिगत रूप में मैं कहूं, नितांत आवश्यक है। कोई ऐसा माने कि उनको गुरु की जरूर नहीं तो वो उनका खयाल है, उनको मुबारक। हम जैसों के लिए गुरु के अलावा हमारी संपदा और क्या है? गुरु है तो सबकुछ है। भारत, विशुद्ध प्रवाही गुरुपरंपरा का यह देश है। मैं तो यह सोचता हूं कि यदि गुरु हमारे पास नहीं है तो हमारे हाथ में क्या है? उर्दू और हिन्दी के एक शायर राजेश रेड्डी का एक बहुत प्रसिद्ध शे'र है -

आप चाहे तो मेरे हाथों की तलाशी ले ले।
मेरे हाथों में लकीरों के सिवा कुछ भी नहीं।

हमारे हाथ की लकीर जो पढ़ता है वो गुरु है। नारद ने पार्वती के हाथ की लकीरें पढ़कर के बताया था कि उसे शिव प्राप्त होंगे। गुरु न हो तो कुछ नहीं है। गुरु है तो हमारी लकीरों में यह मांग भर देता है और शिव तक हमें पहुंचा देता है। ऐसे गुरु की जरूरत होती है। कई विचारधाराएं बीसवीं सदी में भी आई, इक्कीसवीं सदी में भी आई कि गुरु की जरूरत नहीं! उसको गालियां दी गई है! उसको एजन्ट और दलाल तक कह दिया गया है! खैर! यह उनके विचार है, मुबारक! लेकिन हम जैसों के लिए गुरु चाहिए। लेकिन मेरी मान्यता इतनी जरूर रही, मैं विनम्रता से कहूं कि परंपरा प्रवाही होनी चाहिए, जड़ नहीं। तो गुरुपरंपरा अद्भुत है बाप! तुलसी ने 'गुरुगीता' से आरंभ किया है रामकथा का पहला प्रकरण। दो-तीन पंक्तियों में गाया जाय -

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

गुरु की चरणरज से मेरी दृष्टि को शुद्ध करके दृग विवेक प्राप्त करके मैं 'रामचरित मानस' का वर्णन करने जा रहा हूं, ऐसा तुलसी उद्घोष करते हैं। फिर सबसे पहले -

प्रनवऊं प्रथम महिसूर चरना।

ब्राह्मण देवताओं के चरणों की वंदना की। फिर सज्जनों की वंदना की। फिर साधुसमाज की वंदना की। और साधुसमाज को प्रयाग कहकर, चलता-फ़िरता तीरथराज कहकर साधुओं की वंदना की। खलों की, शठों की, निशिचरों की, रजनीचरों की, अच्छे की, बुरे की, सबकी वंदना गोस्वामीजी ने की, क्योंकि आंख पवित्र हो गई। हमारी आंख पवित्र हुई है इसका पहला प्रमाण है कि हमें कोई निंदा करने जैसा दिखे ही ना। और प्रसिद्ध पंक्ति -

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

पूरे जगत को सीतराममय समझकर गोस्वामीजी प्रणाम करते हैं। पारिवारिक वंदना में भी गोस्वामीजी प्रत्येक का परिचय देते हैं। दशरथजी का, कौशल्या माँ का, जनकजी का, फिर भरतजी का, शत्रुघ्न का, लक्ष्मणजी का यह वंदना में एक विशिष्ट प्रकार का परिचय देते हुए तुलसीजी जो एक नितांत आवश्यक वंदना मानी गई वो हनुमानजी की वंदना करते हैं -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

बीच में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना आती है। मैं आप सब को इतना ही कहकर आज की कथा को विराम की ओर लिए चलूं कि श्री हनुमानजी की वंदना नितांत आवश्यक है। हनुमानजी प्राणतत्त्व है। हनुमानजी ने 'रामचरित मानस' के जो पंच प्राण है उसकी रक्षा की है। मेरे भाई-बहन, आप किसी भी धर्म के अनुयायी हो, मुबारक। किसी भी संप्रदाय से दीक्षित हो, कुबूल। लेकिन साधना में, परम को पाने की यात्रा में यदि गति चाहिए तो मन की जड़ता और ग्रंथियों को छोड़कर हनुमंततत्त्व का आश्रय करिएगा। बिना हनुमंततत्त्व साधना में गति नहीं होती; प्राणबल इकठ्ठा नहीं होता। पवन सांप्रदायिक नहीं है। पवन एक देश का नहीं है, एक जाति का नहीं है, एक कोम का नहीं है, एक भाषा का नहीं है, एक मजहब का नहीं है। पवन सबका है। और गोस्वामीजी 'प्रनवऊँ पवनकुमार' कहकर श्री हनुमानजी को पुकारते हैं। वो पवनपुत्र है। हनुमानजी सबके हैं। कोई पूर्वग्रह से न माने तो उसके साथ तो विवाद का व्यासपीठ को कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन हनुमंततत्त्व का आश्रय हम सब करें। रामकथा में यदि प्रवेश करना है; रामभजन में यदि प्रवेश करना है; राममंत्र को, शुद्धमंत्र को यदि विशेष अनुभवों से लेना है तो सब जगह हनुमंततत्त्व की जरूरत है। बिना हनुमान असंभव है। हनुमान का आश्रय भाई-बहन सब कर सकते हैं। कोई विशेष अनुष्ठान हो, कोई विशेष वस्तु हो और वहां कुछ मर्यादा है साधना की तो यह हम सब को, भाईयों-बहनों सबको माननी चाहिए। बाकी हनुमंततत्त्व सबका है, सार्वभौम है। इसलिए हनुमानजी का आश्रय बहुत जरूरी है। तो पहले दिन की कथा हनुमानजी तक ले जाते हैं। आईए, 'विनय' के शब्दों के साथ हनुमानजी के चरणों में अपना भाव समर्पित करें-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।

•

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

'रामचरित मानस' का संक्षिप्तिकरण करो तो 'भुशुंडि रामायण' है। और इसका भी संक्षिप्तिकरण यदि देखना है तो 'हनुमानचालीसा' है। तुलसी ने तो 'हनुमानचालीसा' का आरंभ करते हुए 'बरनऊं रघुबर बिमल जस' कहकर आरंभ कर दिया। हनुमान का यश नहीं, रघुबीर का ही यश है। संक्षिप्त रामकथा 'हनुमानचालीसा' में ओतप्रोत है। मेरे भाई-बहन, मुझे कोई माहिती देगा तो मैं राजी होऊंगा, कुबूल करूंगा। लेकिन आदि चालीसा जगत में किसी ने रची है तो गोस्वामीजी ने रची है। फिर कई 'चालीसा' का सर्जन हुआ है। आवकार्य है; स्वीकार्य है। लेकिन गोस्वामीजी ने 'हनुमानचालीसा' का जो साक्षात्कार किया। भाई हो, बहन हो कोई भी हो, 'हनुमानचालीसा' का आश्रय किया जाए। एक बार आप 'हनुमानचालीसा' का पाठ कर ले दिन में तो आपका 'मानस' का पाठ हो गया। इसका मतलब यह नहीं कि 'मानस' का पाठ नहीं करना। लेकिन इस भाव को भी ठुकराया न जाए। युवान भाई-बहनों को खास कहूं कि कम से कम एक बार सुबह, एक बार दोपहर, एक बार शाम 'हनुमानचालीसा' का पाठ करना। बहुत बल मिलेगा; बुद्धि मिलेगी; विद्या मिलेगी। क्योंकि युवानों में बल की जरूरत है। लेकिन केवल बल हो और बुद्धि न हो तो बल संहारक बन जाता है, विनाशक बन जाता है। इसलिए बुद्धि की जरूरत है कि बल का कहां, किस वक्त उपयोग किया जाए। बुद्धि भी आदमी को बांध देती है और आदमी का आखिरी लक्ष्य तो मुक्ति होता है। बहुधा मुक्ति तो विद्या देती है। इसलिए विद्या चाहिए, बुद्धि चाहिए, बल चाहिए। तीनों देनेवाला हनुमानजी है, 'हनुमानचालीसा' है।

बल बुद्धि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेश बिकार।।

तो 'हनुमानचालीसा' का आश्रय करना। मैं तो ग्यारह बार का आग्रह करता हूं। ग्यारह बार न हो, नौ बार; नौ बार न हो तो सात बार; सात बार न हो तो पांच बार; तीन बार; एक बार। एक बार न करो तो भी कोई बात नहीं, केवल 'जै जै जै हनुमान गोसांई। कृपा करौ गुरुदेव की नांई।।' यह भी न कर सको तो कृपा इतनी जरूर करना कि 'हनुमानचालीसा' का कोई पाठ करे तो उसकी निंदा मत करो। जो कर रहे है उसको करने देना। तो श्री हनुमानजी महाराज की वंदना गोस्वामीजी ने की। हर वक्त पहले दिन की कथा हनुमंतवंदना पर विराम कर देता हूं।

यह चित्रकूट प्रभु की विहारभूमि है। लेकिन प्रभु के लिए यह विहारभूमि है, साधकों के लिए यह विरागभूमि है। यहां से आदमी को सहज विराग प्राप्त होता है। तीसरा, भगवान वशिष्ठ, राजर्षि जनक, परमहंस भरत, मुनिगण आदि-आदि की यह विवेकभूमि है। यह विवेक-विचार की भूमि है। चौथी, मुझे कहने दो यह विश्वास की भूमि है। पांचवां और अंतिम सूत्र, यह वियोग की भूमि है। यद्यपि यहां राम-भरत का मिलन हुआ है; सबका मिलन हुआ है लेकिन तत्त्वत: यह आंसू और विग्रह की भूमि है।

मानस-भरत : २

जो भजन में निरंतर रत है वो भरत

पूज्यपाद गोस्वामीजी वंदना में श्रीभरतजी की वंदना करते हुए एक अर्थ में श्रीभरतजी का हमें परिचय कराते हुए कहते हैं कि मैं सबसे पहले भरतजी के चरणों में प्रणाम करता हूं। जिनके तीक्ष्ण नियम-व्रत है, जिनका मन मधुप बनकर निरंतर लुब्ध रहता है और कभी इस चरण से बिरत होने को राजी नहीं, ऐसे श्रीभरतजी को मैं प्रणाम करता हूं। इन पंक्तियों को केन्द्र में रखते हुए इस परमपावन भूमि पर संतों-महंतो की उपस्थिति में कुछ बातचीत कर रहे हैं। सबसे पहले मेरे युवान भाई-बहनों को कहना चाहूंगा कि 'भरत' शब्दब्रह्म जो है, भरत एक नाम है, एक संज्ञा है, उसका अर्थ हम समझ लें। खास करके युवान भाई-बहनों को इसीलिए संबोधित करता हूं, आज एक युवान भाई ने चिठ्ठी भी लिखी कि अखिलेश और उसके परिवार पूर्वजों का बहुत पुण्य कि वो इस कथा के यजमान हो पाए। मैं भी कहता रहता हूं कि पूर्वजों के कारण भगवद्कथा में आदमी निमित्त बनता है। यह तो है लेकिन मुझे यह भी लगता है कि जो नई चेतनाएं आई है उसको विशेष जागृत करने के लिए परमात्मा किसी को निमित्त बना देता है। आप 'रामचरित मानस' ऐसे, एक सीधी लाइन में लिखो जैसे सब लिखते हैं, लेकिन किसी ग्रंथ में उपर से नीचे की ओर लिखा होता है। उपर 'राम', बीच में 'चरित' और नीचे 'मानस।' ऐसे 'रामचरित मानस' आप उपर से नीचे की ओर लिख दो और उसको एक सीढ़ी समझ लो तो चढ़ने के लिए पहले मानस, फिर चरित, फिर राम। इसका मतलब हुआ सद्चर्चा करते हुए हमारा मानस, हमारा हृदय जितनी भी मात्रा में विनय हो, निर्भय हो। उसके बाद चरित। हम चरित्र में प्रवेश करे। उसके बाद हम राम तक पहुंचे। तो बुझुर्गों से आशीर्वाद लेकर युवकों के लिए, युवाशक्ति के लिए बोलने को ज्यादा मन करता है। वशिष्ठजी ने कैकेयीपुत्र का नाम जो भरत रखा है, यह पंक्ति मैं ऐसे ही कह दूं। आप गाएंगे तो ओर अच्छा लगेगा।

बिस्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई।।

एक वस्तु पक्की समझना मेरे श्रावक भाई-बहन, आपकी श्रद्धा हो कि न हो अल्लाह जाने, लेकिन भाव-कुभाव से 'राम' बोलने की महिमा तो सवाल ही नहीं, लेकिन किसी भी भाव में श्रद्धा हो न हो आपके और मेरे मुख से 'भरत' शब्द निकलता है, 'भरत' शब्द बोलने से पापप्रपंच का नाश होता है। मैं इस पर पूरा विश्वास करके आगे बढ़ रहा हूं। कोई शास्त्र मंत्रदीक्षा दे, गुरु दे, बुद्धपुरुष दे, सद्गुरु दे। 'रामचरित मानस' में जो यह मंत्रदीक्षा आई है कि यह 'भरत' जो बोलेगा तो उसके समस्त पापप्रपंच मिट जाएंगे। लोक में सुजश, परलोक में सुख; भरत, तुम्हारा नाम लेने से ऐसा हो सकता है। इसीलिए तो राम स्वयं भरत नाम का मंत्र जाप करते हैं।

भरत सरिस को राम सनेही।
जगु जप राम रामु जप जेही।।

विवेक सागर भगवान वशिष्ठ, विधि-लेख को बदलने में समर्थ भगवान वशिष्ठ जब कैकेयी पुत्र का नाम भरत रखते हैं तो कितने संदर्भ लिए हुए यह नाम रखा होगा! इसलिए मैं आपसे बात करना चाहता हूं कि भरत नाम की व्याख्या तो क्या करें यार! लेकिन भरत नाम का थोड़ा हम परिचय प्राप्त करें। भरत मानी क्या? जिसको भगवान राम जपते हैं; जिस शब्दब्रह्म का उच्चारण करने से अखिल अमंगल भार मिट जाता है।

तो भरत मानी क्या? एक संत का अभिप्राय है, भरत उसको कहते हैं जिसका अंत:करण, जिसका हृदय जो कहो, निरंतर भजन में रत रहता है उसीका नाम भरत है। निरंतर भजन में जिसको रति है। रत मानी आसक्त, लुब्ध, लगे रहना, सटे रहना। एक क्षण भी इससे विरत होना जिसको सह्य नहीं। मैं वहां तक कहूंगा, किसी भी व्यक्ति को आप निरंतर भजन में डूबा पाओ तो उसको भरत कहने में कोई चिंता नहीं है। भले ही नाम उसका दूसरा हो। वो आध्यात्मिक दृष्टि से भरत है। अब आप कहेंगे, खास करके युवान भाई-बहन पूछेंगे कि भजन में रत रहना मीन्स क्या? भजन मानी क्या? तो संस्कृत वाङ्मय में तो ऐसा कहा गया, 'भज् धातु सेवायाम्।' 'भज्' धातु सेवा के लिए प्रयुक्त की जाती है। जो आदमी निरंतर सेवा में डूबा हुआ है उसमें भरत का स्वभाव है। लक्षण और गुण न कहूं लेकिन भरत का स्वभाव उसमें धीरे-धीरे उजागर होता है।

कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर का एक मंतव्य है भरत के बारे में, शायद आपने पढ़ा होगा। निरंतर कर्म में निरत रहे, उसको टागोर कहते हैं, मैं भरत कहता हूं। जरा विचित्र-सा लगता है! निरंतर कर्म में डूबे रहना! यद्यपि सेवा में डूबे रहना भरत है। सेवा तो कर्म ही है एक अर्थ में। जब मैंने टागोर का यह अभिप्राय पढ़ा तो एक क्षण लगा, यह टागोर क्या कहना चाहते हैं? निरंतर कर्म में प्रवृत्ति। यद्यपि हमारे भरतजी प्रवृत्त है। एक भी दायित्व छोड़ा नहीं भरत ने। समस्त दायित्वों का निर्वहन भरतजी ने किया है। कर्मयोगी है भरतजी अवश्य। तो टागोर ने जब कह दिया कि निरंतर कर्म में जो निरत हो वो भरत है। टागोर जब जपान में थे तो कई स्टुडन्ट उनके पास आकर ओटोग्राफ मांगते थे कि गुरुदेव, हमको कुछ लिख दो। वो इंग्लिश में लिख देते थे, साइन कर देते थे उसमें खबर नहीं, टागोर के मन में यह बात आई और उसने भरत नाम की व्याख्या एक जपानीझ स्टुडन्ट को लिख दी, 'निरंतर कर्म में जो रत है उसका नाम भरत।' और 'भरत होओ।' ऐसा लिखकर गुरुदेव ने साइन की। मैंने जब पहले पढ़ा तो लगा कि भरत को किस रूप में टागोर देखते हैं? तब मुझे फिर भगवान वशिष्ठजी की स्मृति हुई। क्योंकि हमें तो यहां ('रामायण' में) पूछना पड़ता है! जो भी रामकथा के गायक है, जिन्होंने रामकथा को सर्वस्व समझा हो उसको प्रमाण सिर्फ यहां से प्राप्त करना होता है। ओर कोई चारा नहीं! 'मानस' प्रमाण दे तो 'इति सिद्धम्।'तो बाप! 'मानस' को पूछना पड़ता है कि टागोर ने भरत को कर्मठ क्यों कह दिया? भरत तो असंग है। यद्यपि वो राजकाज सबकुछ करते हैं, लेकिन अंदर से तो -

तेहि पुर बसत भरत बिनु राग।

'मानस' में जहां 'भरत', 'भरत', 'भरत', 'भरत' यह शब्दब्रह्म आया है इतनी पंक्तियां बिलग करके कभी 'भरतायन' का पाठ करना। एक अद्भुत ऊर्जा प्राप्त होगी। मैंने कभी एक समय में ऐसा प्रयोग किया है कि भरतवाली पंक्ति मैं ढूंढता रहता था। समय भी बहुत रहता था स्वाध्याय का। वो ही पंक्तियां गाते-गाते लगा, 'रामचरित मानस' में एक छोटा 'भरतायन' समाया हुआ है। एक 'सीतायन' समाया हुआ है। भले उल्लेख बिलकुल कम हो लेकिन एक 'शत्रुघ्नायन' समाया हुआ है। एक 'लक्ष्मणायन' समाया हुआ है। क्या नहीं है? शतकोटि एक में है। और कहीं खोजने की जरूरत नहीं। एक में शतकोटि है यदि गुरुकृपा से आंख खुल जाए तो। जितने महापुरुष रामकथा गाते हैं उनके यह अनुभव है। लोग आते हैं हमारे पास कि सौ करोड 'रामायण' कहां हैं? मैंने कहा कि यह एक ही सौ करोड है। एक तो पहले पूरा पढ़, फिर सौ करोड की बात कर! यदि प्रीत हो गई तो बंदे, एक पंक्ति से आगे नहीं बढ़ पाओगे! एक पंक्ति तुम्हें रोके रहेगी। दूसरा कोई अक्षर नहीं पढ़ पाओगे! क्योंकि आंखों में नेह जल का पर्दा आने लगेगा।

युवान भाई-बहन, 'रामायण' पढ़ो। 'मानस' गाओ। न पढ़ो तो चिंता नहीं, तुम्हारी झोली में 'रामचरित मानस' रखो यह तुम्हारा भारतीय होने का परिचय है। यह संतों की तपस्या है। महात्माओं की देन है। इन्होंने इतना अध्ययन किया है, अनुष्ठान किया है 'मानस' का। हमें तो

आखिर यह पंचम वेद को पूछना पड़ता है कि किसी महापुरुष ने भरत की यह व्याख्या की तो हमें आप बताओ, यह कर्मठ कैसे? तो मुझे फिर भगवान वशिष्ठजी याद आने लगे।

बिस्व भरन पोषन कर जोहि।

एक व्यक्ति का भरणपोषण करे, एक परिवार का भरणपोषण करे, एक गांव का भरणपोषण करे, एक जनपद का भरणपोषण करे, एक राज्य का, एक राष्ट्र का भरणपोषण करे तो यह बड़ा कर्मठ होगा? कितना बड़ा कर्मशील होगा? जो एक्टिविस्ट आज के जमाने में यूझ किया जाता है उस अर्थ में मैं नहीं कहता। यह कितना बड़ा कर्मशील होगा?

तो भरत नाम का एक अर्थ है जो भजन में निरंतर रत है। निरंतर भजन; हमारे गुजरात में जागी हुई एक महिला हुई गंगासती, बुद्धता प्राप्त मैं कहूंगा इस महिला को; उसने कहा है गुजराती में, 'जेने सदाय भजननो आहार।' जो निरंतर भजनशील हो वो भरत है, 'नाम जिह जपु लोचन नीरु।' कोई ऊंगली ही नाम जपती थी, माला ही नाम जपती थी, ऐसे नहीं। आंखें भी नाम जपे, होठ भी नाम जपे, स्फुरण हो, रोम-रोम खड़े हो जाएं। प्रत्येक अंग में भजन की बाढ़ आए। ऐसा कोई महापुरुष वो भरत है।

'श्रीमद् भागवतजी' में एक भरत है, लेकिन वो जड़ भरत है। 'मानस' का भरत जड़ को चेतन करता है, चेतन को जड़ बना देता है। 'भागवत' का जड़ भरत मानी ज्ञानी है। लेकिन मेरे 'मानस' का भरत प्रेमी है। और 'शकुंतला' का भरत शूरवीर है। तीन भरतों ने हमारे देश को विश्वगुरु की पदवी प्रदान कर दी थी। युवान भाई-बहन, भरत का पहला अर्थ है, जो भजन में रत है अथवा तो जो भक्ति में रत है। शबरी को ठाकुरजी ने नव प्रकार की भक्ति कही। यह नवोनव भक्ति जिसमें हो, 'मानस' के आधार पर आप देख पाओ तो उसमें भरत का स्वभाव है। भरत दूसरा नहीं होता, ध्यान रखना। भरत भरत है, अद्वितीय है, अनुपम है। लेकिन भरत के स्वभाव की झांकी महापुरुषों में होने लगती है। पहला नाम का अर्थ है, जो भजन में लुब्ध है, रत है, आसक्त है। भक्ति में रत है उसको भरत कहते हैं।

दूसरा एक संत कहते हैं; 'भ' अक्षर ज्ञानवाचक भी है। जो ज्ञान में रत है उसको भी भरत कहते हैं। भरत का ज्ञान क्या है? भरत का विवेक क्या है? भगवान राम कितने-कितने प्रमाणपत्र दिए जाते हैं भरत को 'मानस' में?

भरतु हंस रबिबंस तडागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।।
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता।
मिलइ रचइ परपंचु बिधाता।।

भरत का एक दूसरा अर्थ, एक संत का अभिप्राय; जो ज्ञान में, विवेक में निरंतर रत हो वो भरत है। कर्म में निरत है वो भरत है। भजन में निरत है निरंतर वो भरत है। विचित्र लगेगा एक साधु का अभिप्राय लेकिन एक साधु कहता है, जिसको भव में रुचि है वो भरत है। भव मानी संसार। जिस व्यक्ति को भव में रुचि है, भव में निजता है। अब धर्मपुरुष हमको सिखाते हैं कि यह भवसागर से बाहर निकलो, मुक्त हो जाओ। भव में क्यों रति? संसार में क्यों लिप्त रहते हो? निकलो बाहर यहां से ऐसा ही सिखाया गया है! जिस व्यक्ति को भव में रुचि है उसको भरत कहते हैं। कैसे? 'जनम जनम रति राम पद।' मुक्ति नहीं; भवभव हमें राम चरण में रति प्राप्त हो। हम भव से, संसार से उब गए ऐसी बात नहीं। ऐसा भरतजी मांगते हैं कि हमें जनम-जनम रामचरण की प्रीति भवभव प्राप्त हो।

एक साधु का एक ओर अभिप्राय, भरत मानी क्या? उस महात्मा ने 'भ' का अर्थ कर दिया, 'भ' मानी भय। 'भ' अक्षर उठाया और उसको भय के साथ जोड़ दिया। भय में जो ग्रस्त है, भय में डूबा रहता है, सतत भयभीत हो उसको एक साधु ने भरत कह दिया। भजन करे वो भयग्रस्त हो? ज्ञानी को भय हो? संत को भय कैसा? मैं तो गुजराती में कहता रहता हूं, 'बीवे ए बावो नहीं।' मेरा वाक्य है, जो डरे वो साधु नहीं। क्यों डरे? हनुमान का आश्रय करो, कभी डर नहीं लगेगा, भय नहीं लगेगा। भक्त भयभीत हो यह मेरी समझ में नहीं आता। हां, भक्त भयग्रस्त होता है। कब? कि कहीं मेरे से साहिब का अपराध न हो जाए! कहीं मेरा भरोसा खंडित न हो जाए! कहीं मेरी श्रद्धा विकलांग न हो जाए! कहीं मेरे इष्ट को छोड़कर मेरा अन्याश्रय न हो जाए! कहीं मैं भटक न जाऊं! किसी के प्रलोभन, किसी के प्रभाव में आकर मेरा मूल्य मैं छोड़ न दूं! ऐसा एक भय। हमारे यहां श्रेष्ठों से थोड़ा डरके

रहना अभयपद पाने की पूंजी है। सच्चा गुरु किसी को भयभीत नहीं करेगा। ना ऐसी बातें ही करेगा जिससे भय उत्पन्न हो कि तू नरक में जाएगा, यह हो जाएगा! गुरु मिले और शिष्य की दुर्गति हो तो शिष्यपद कलंकित हो जाता है। भय कैसा?

भरतजी भय में रत रहते हैं, डरे-से रहते हैं। आप देखिए, अयोध्या से भरतजी की जो यात्रा शुरू होती है। चित्रकूट जाते-जाते असमंजसता है, कभी पैर जल्दी पड़ते हैं, कभी ढीले हो जाते हैं! कभी पुकारने लगते हैं! एक समय तो ऐसा आ गया, भरतजी सोचने लगते हैं, मेरा नाम सुनकर तीनों जन स्थान छोड़कर कहीं दूर तो नहीं चले जाएंगे कि भरत आ रहा है, कहां इसके साथ मुलाकात करें? कहीं चल तो नहीं देंगे? भरत की जो यह गति है। मथुरा से नंद की बिदाई हो रही थी। कृष्ण की कुछ चेष्टाओं से नंद को दो दिन से घबराहट पैदा हो गई थी। रात को सो नहीं पाए नंदबाबा कि यह गोविंद की रीतभात बदल चुकी है मथुरा में आते और यह शायद लौटेगा नहीं! एक भय शुरू हुआ, क्योंकि पूरा बदला हुआ कृष्ण उसने दिखा। और नंद बोल नहीं पाते हैं, न कृष्ण बोल पाते हैं। प्रेम के मारग में, भाव के मारग में यह गति होती ही है। भरत की भी यही दशा है। शरफ़साहब का मशहूर शे'र है -

फले-फूले कैसे ये गूंगी महोब्बत।
न हम बोलते हैं न वो बोलते हैं।
महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।

शरफ़साहब कहते हैं कि हम उर्दू झुबां बोलते हैं, जो कानों में रस घोल देते हैं। मैंने कहा, शरफ़ साहब, मैं तो 'मानस' का गायक हूं। थोड़ा फेरफार करूं तो आपको एतराज़ तो नहीं -

महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये तुलसी जूबां है, जो हम बोलते हैं।

यह तुलसी की जूबां है। यह देश में तो तुलसी की जूबां की महिमा है। सूर की जूबां की महिमा है। मीरां की जूबां की महिमा है। एकनाथ-तुकाराम की जूबां की महिमा है। नरसिंह मेहता की जूबां की महिमा है। तो एक भय होता है साहब! तो भरत की यह दशा देखता हूं तो नंद की दशा याद आती है। और वो घड़ी आई जो नंद नहीं चाहते थे। चित्रकूट में भी वो घडी आई जो भरत नहीं चाहते थे कि तुझे लौटना पड़ेगा। वो घड़ी आई। नियति नियति रहती है बाप!

मैं एक साधु की, भरत की व्याख्या के रूप में यह बातें बता रहा हूं जो भय में रत है। यह भय ऐसा भय कि 'कहीं चल न दें हमें छोड़कर, मेरे हमसफर, मेरे हमसफर ...' भरत की यह दशा है। प्रेम में इस तरह का एक संकोच, इस तरह की एक भीति होती है। बुद्धिमान लोग 'मानस' की आलोचना करने में कमी नहीं बरत रहे हैं क्योंकि उनको एक ही वस्तु दिखती है, 'मानस' पकड़ो, कहीं से भी पकड़ो और उसकी आलोचना करो! तो कहते हैं, 'भय बिनु होइ न प्रीति।' यह बाबा ने क्या लिख दिया!

भय के बीना प्रीति नहीं होती। भय से प्रीति हो वो खाक प्रीति! अब उसको कैसे समझाएं कि 'मानस' किसी बुद्धपुरुष के चरण में बैठ करके पाया जाता है, अलमारी से लेकर नहीं पाया जाता। उसके लिए तो किसी के पास बैठना होता है। कोई भी प्रीति भय के बिना नहीं होती। मेरा कहना यह है। जहां प्रेम है वहां थोड़ा यह संकोच, यह भय कि कहीं दाग न लग जाए; मेरा प्रियतम कहीं छूट न जाए।

युवान भाई-बहन, प्रीत में थोड़ा भय है उसको समझो। एक बार प्रेम कर लो तो भय रहेगा कि कहीं कोई चूक न हो जाए! भय के कारण प्रीत नहीं, लेकिन प्रीत हो जाए तो भय भी सुंदर लगता है, भीषण नहीं लगता। यह दूषण भूषण बन जाता है। प्रेम में, भक्ति में, भजन में विश्वास अखंड रहता है लेकिन कभी अपनी करतूत का विचार आदमी को ढीला कर देता है। कभी उनकी करूणा याद आते आदमी फिर होश में आ जाता है कि नहीं, नहीं, वो मेरा त्याग नहीं कर सकते, वो मुझे नहीं छोड़ेगा। मेरे युवान भाई-बहन, कभी प्रीति मत करना भय के कारण, प्रलोभन के कारण लेकिन एक बार प्रीत हो गई हरि से फिर थोड़ा भय आएगा। ये याद भी रखना कि कहीं चूक न हो जाए, कहीं कोई गरबड़ न हो जाए। भरत का एक अर्थ एक साधु करता है, जो भय में रत है। यह स्वाभाविक है। भरत तो प्रेममूर्ति है।

एक साधु की ओर व्याख्या कि भरत किसको कहे? हमारे यहां एक शब्द है 'भर्ता।' भर्ता माने पति। भर्ता का अर्थ है पालन करना। भरत का अर्थ हम सबको प्रेम से और त्याग से स्वाभाविक रूप में भर देनेवाला व्यक्तित्व उसका नाम है। जो त्याग और प्रेम से हमको भर दे बस! भरत के चरित्र से सबसे बड़ी बात यह है कि हम रोज भरे जाऐंगे, बाढ़ आएगी। त्याग के कारण रिक्त होते जाएंगे, प्रेम के कारण भरे जाएंगे। हमारा भार जो वहन करे उसको भी एक साधु भरत कहते हैं। ध्यान देना, भरत है सद्गुरु। भरत और भुशुंडि 'रामचरित मानस' के सर्वोच्च बुद्धपुरुष है। बुद्धपुरुष तो कई मिलते हैं, लेकिन यह सर्वोच्च है। यह ऐसे बुद्धपुरुष हैं जिसके पास जाते ही हम निर्भार हो जाते हैं; आश्रित बिलकुल निर्भार बन जाता है। ऐसा भी एक अर्थ पाया गया 'भरत' शब्द के अर्थ में। तो मेरे भाई-बहन, 'रामचरित मानस' में छुपा हुआ एक 'भरतायन' है, एक भरतचरित्र छुपा हुआ है उसके कुछ पहलू को हम बहुत अदब के साथ, कहीं चूक न हो जाए, भरत के इस दिव्यचरित्र को कहीं वो अपराध न हो जाए, ऐसी सावधानी के साथ धीरे-धीरे उसको स्पर्श करने की कोशिश करेंगे।

तो, 'मानस-भरत' को केन्द्र में रखते हुए हम कुछ बातें कर रहे है। मेरे मन में जो चल रहा है वो यह है कि इन दिनों में 'मानस' के आधार पर आपके सामने भरत का धर्म रखूं कि भरतजी का धर्मदर्शन क्या है? भरतजी धर्म को किस रूप में देखते हैं? भरत का अर्थदर्शन क्या है? मुझे यह भी कहना है कि भरत का कामदर्शन क्या है? यद्यपि वह पूर्ण निष्काम है। 'अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहहु निर्बाण।' का यह व्यक्ति है। भरतजी का मोक्षदर्शन क्या है? पांचवां मेरी व्यासपीठ उत्सुक है बात करने के लिए कि भरत का सत्यदर्शन क्या है? भरत का सत्य क्या है? भरत सत्य को किस एंगल से देखते हैं? भरत का प्रेमदर्शन क्या है और भरत का करुणादर्शन क्या है? सात बिंदुओं को इस कथा में स्पर्श करना है 'मानस' के आधार पर। यह सात हमारे जीवन को धन्य कर सकते हैं। एक बिलग दृष्टि से इन सातों को भरतजी 'मानस' में देखते हैं। और हम कोशिश करें भरत की आंखों से इन सातों बिंदुओं को देखने की।

आइए, हम आगे बढ़ें 'रामचरित मानस' में इससे पहले दो-पांच मिनट मुझे दीजिएगा। हमारी पंडितजी महाराज कहा करते थे कि कई लोगों को भूख लगने की गोली पहले लेनी पड़ती थी! पहले गोली लो फिर भूख लगे, क्षुधा जागे। फिर लोग खाए इतना कि पचाने के लिए फिर गोली लेनी पड़ती है! तो भगवान की कथा में भी हरिनाम की गोली पहले ली जाए ताकि जिज्ञासा जगे, पिपासा जगे, भूख जगे और फिर भगवान की कथा का भरपेट आस्वाद लेने के बाद पच जाए इसलिए फिर हरिनाम संकीर्तन। आइए, कुछ क्षणों के लिए भाव से हरिनाम का संकीर्तन करें -

श्री राम जय राम जय जय राम, जय जय राम।

आचार्यचरण मधुसूदन सरस्वती महाराज ने एक बात फरमाई है कि 'व्यर्थ कालत्वम्...' मैं सतत कथाओं में कह रहा हूं युवान भाई-बहनों को कि मैं आपको ऐसी बातें तो न कहूं कि आप काम न करे, पढाई न करें, अपनी फर्ज़ अदा न करें। आपको सबकुछ करना है। आप केवल कथा ही सुनते रहे ऐसा भी नहीं। जब मौका मिले सुनो। मैं तो इतनी ही मांग करता हूं कि मेरे देश का जुवान मेरी व्यासपीठ को साल में नव दिन दे, तो व्यासपीठ उसको नवजीवन दे देगी। तो आचार्य चरण ने कहा कि जब सबकुछ हमारा कार्य पूरा हो जाए। टी.वी. चेनल बदल-बदल कर देख ली, किताब पढ़ ली। अब सोने को है फिर भी नींद नहीं आ रही है और कोई काम बाकी नहीं तो आचार्यचरण कहते हैं, उसी काल को व्यर्थ मत गंवाना। पांच मिनट, दस मिनट तुम्हारे जो इष्टदेव हो, तुम्हारे जो मंत्र हो गुरु ने दिया हो अथवा तो नाम हो, जिस भी मजहब या संप्रदाय के आप हो, मुबारक; उसी समय इतना समय हरिनाम का आश्रय कीजिए। चौबीस घंटों यह तो महात्मा करे, कर सकते हैं। हम संसारी है। प्रेक्टिकल होना चाहिए। लेकिन दो-पांच मिनट भी आदमी प्रभुनाम का आश्रय करे; क्योंकि तुलसी ने नाममहिमा की चर्चा करते हुए कहा -

नहीं कलि करम न भगति बिबेकू।
रामनाम अवलंबन एकू।।

यह कलियुग है बाप! गोस्वामीजी पूर्णांक में पूरा प्रकरण लिख देते हैं नाम वंदना में, नाम महिमा की चर्चा में कि कलियुग में न इतना कर्मयोग हमारा ठीक होगा, न ज्ञानयोग ठीक होगा, न भक्तियोग ठीक होगा। कलियुग में केवल रामनाम ही अवलंबन है। कुल मिलाकर गोस्वामीजी को यह कहना है कि रामनाम, कोई भी नाम, आप कृष्ण नाम में रुचि रखे तो कृष्णनाम, दुर्गा, शिव जो नाम, अल्लाह का नाम लो कोई आपत्ति नहीं। कोई बुद्ध का नाम ले, कोई महावीर का नाम ले, जिसको जो रास आए।

मेरे भाई-बहन, कोई भी मंत्र, कोई भी नाम आपके गुरु ने दिया, मुबारक। उसको पकड़े रहो, लेकिन आपके पास कोई नाम न हो और कहीं श्रद्धा न हो तो यह वैश्विक मंत्र है राम। कोई भी ले सकता है। सब नाम महान है। सब नाम की अपनी विशेषता है, लेकिन रामनाम रामनाम है। बाकी मैं तो सबका स्वीकार करता हूं। हरिनाम भी बुलाता हूं, अल्लाह का नाम भी, 'बुद्धं शरणं गच्छामि' भी लेकिन राम हमारी मूल है, जड़े हैं रामनाम। यह जगत पैदा हुआ रामनाम से। जगत चल रहा है रामनाम से और एक नया सर्जन लाने से पहले विसर्जित करना होगा जगत तभी भी रामनाम ही काम में आएगा। यह राम नाम की महिमा है। इसलिए हरिनाम का आश्रय करे। आप भाव से लो, मुबारक। यदि भाव न जगे और 'राम राम' बोलो, धन्य है। अनख से, आलस से कैसे भी। लेकिन प्रभु का नाम लो।

नाम का आश्रय लेकर आशीर्वाद प्राप्त करके तुलसीदासजी अपने 'रामचरित मानस' का थोड़ा क्रम बताते हैं। इस ग्रंथ की जो रचना हुई उसकी बात गोस्वामीजी कहते हैं। 'रामचरित मानस' जो है, सबसे पहले भगवान शिव ने उसकी रचना की। 'वाल्मीकि रामायण' और उसके रचयिता वाल्मीकिजी वो आदिकवि है। कवि वाल्मीकि का प्रताप है की शोक श्लोकत्व को पा गया और कविता ऊतरी। इसलिए वाल्मीकिजी को हम आदिकवि कहते हैं। लेकिन भगवान शिव ने 'रामचरित मानस' की रचना की और रचना करके इसे अपने मानस में रखा इसीलिए शिव को संतों ने अनादि कवि कहा है। वाल्मीकि आदि कवि और शिवजी अनादि कवि। 'रचि महेस निज मानस राखा।' महादेव ने अपने हृदय में रामकथा को बिलकुल हृदयस्थ रखी और फिर योग्य समय पर पार्वती के आगे गाई। रामकथा कैलास के शिखर से दूसरे शिखर पर गई और उसने भुशुंडि को रामकथा दी। और भुशुंडि ने गरुड के प्रति गायन किया। फिर यह कथा ऊंचाई से धरती पर प्रयाग में आई। सबको सुलभ होती गई कथा। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी के सामने इस कथा का गायन

> एक संत का अभिप्राय है, जिसका अंत:करण, जिसका हृदय जो कहो, निरंतर भजन में रत रहता है उसीका नाम भरत है। निरंतर भजन में जिसको रति है। रत मानी आसक्त, लुब्ध, लगे रहना, सटे रहना। एक क्षण भी इससे विरत होना जिसको सह्य नहीं। मैं वहां तक कहूंगा, किसी भी व्यक्ति को आप निरंतर भजन में डूबा पाओ तो उसको भरत कहने में कोई चिंता नहीं है। भले ही नाम उसका दूसरा हो। वो आध्यात्मिक दृष्टि से भरत है।

किया। फिर गोस्वामीजी कहते हैं, कृपालु गुरु ने बार-बार कथा सुनाई तब जाके कुछ मेरे पाले पड़ी बात। और जैसे कुछ बातें समझ में आई और मैंने गांठ बांध ली कि 'भाषाबद्ध करब मैं सोई।'

कई लोग ऐसा तर्क करते हैं कि कथा राम की; सुनानेवाले भी कुछ गिने चुने लोग हैं; बोलते रहते हैं; सुननेवाले भी वोही! तो वोही की वोही कथा सुनते-सुनते आदमी उब नहीं जाएगा? हमारा अनुभव तो बिलकुल विपरीत है कि कोई उबा नहीं। उल्टे ज्यादा लोग कथा में आने लगे हैं! कई लोग तर्क करते हैं, एक बार कथा सुन लो फिर बार-बार सुनने की क्या जरूरत है? लेकिन तुलसी कहते हैं, बार-बार सुननी होगी। क्या राम की कथा आपको पता नहीं? गांधीजी तो कहते थे, इस देश में जिसको रामकथा और 'महाभारत' का ख्याल न हो उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं है। ऐसा गांधी का कड़ा निवेदन था। कौन नहीं जानता राम के बारे में? फिर भी रामकथा बार-बार सुननी होगी तब जाकर कुछ बात बनेगी। मुझे तो ऐसा ही लगता है, यह कलियुग है ही नहीं, कथायुग है। कलियुग में इतना पंडाल कभी किसी ने देखा? कहीं भी वक्ता गाता है, हजारों लोग भगवान की कथा सुनते हैं। यह कलियुग है ही नहीं। और कथा सुनकर स्वर्ग की कामना भी मत करना क्योंकि स्वर्ग में जाओगे तो भी वहां कथा नहीं होगी। कथा तो चित्रकूट में ही होती है। कथा तो धराधाम पर ही होती है। गोस्वामीजी कहते हैं, मैंने तुरंत निर्णय कर लिया -

भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई।।

उसको भाषाबद्ध करने का शिवसंकल्प किया गोस्वामीजी ने और संवत् सोलह सौ इकत्तीस की वो रामनवमी के दिन उसका प्राकट्य हुआ। कहते हैं कि रामनवमी के दिन भगवान स्वयं प्रकट हुए त्रेतायुग में, चैत्र शुक्ल नवमी के दिन, वैसे ही १६३१ में भी ऐसा ही जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि अनकूल हो गया होगा और गोस्वामीजी ने 'रामचरित मानस' का अयोध्या में प्राकट्य किया। तो राम का प्राकट्य दिन है वो ही 'रामचरित मानस' का भी प्राकट्य दिन है।

मेरे भाई-बहन, तुलसी ने इस कथा के चार घाट रचे। 'मानस' का रूपक बनाया। ज्ञानघाट, उपासनाघाट, कर्मघाट, शरणागति का घाट। ज्ञानघाट के प्रवक्ता भगवान महादेव, श्रोता पार्वती। कर्मघाट के वक्ता याज्ञवल्क्य, श्रोता भरद्वाजजी। उपासनाघाट के वक्ता भुशुंडिजी, श्रोता गरुड। शरणागति के घाट पर वक्ता स्वयं गोस्वामीजी और श्रोता अपना मन अथवा संतसमाज। गोस्वामीजी शरणागति के घाट से कथा का आरंभ करवाते हैं और लिए चलते हैं हमें प्रयाग-कर्म के घाट पर। क्या मतलब है? लोग ऐसा मानने लगे हैं कि एक बार शरणागति हो जाए तो कुछ करने की जरूरत नहीं! अवश्य, शरणागत को कुछ करने की जरूरत नहीं है यह बिलकुल सही है। लेकिन यह स्थिति प्राप्त करने के बाद भी शरणागत कभी निष्क्रिय और प्रमादी नहीं होता। और शरणागति से जो कर्म प्रगट होगा उसकी रोनक कुछ ओर होती है। क्योंकि शरणागति का मतलब है निराभिमानिता। बड़ी अद्भुत ढंग से तुलसी कर्म का क्षेत्र हमको बता देते हैं कि शरणागत होने के बाद हम प्रमादी न हो। कथा शरणागति से शुरू होती है और जिसको संतों ने कर्म का घाट कहा वो प्रयाग की ओर तुलसी हमें लिए चलते हैं। एक बार तीरथराज प्रयाग में जब कुंभ का कल्पवास पूरा हुआ, सब महापुरुषों ने विदा ली। यजमान भरद्वाजजी ने सबको बिदा दी, लेकिन परमविवेकी महापुरुष याज्ञवल्क्य जब रजा लेने गए तब भरद्वाजजी ने चरण पकड़कर आग्रह किया कि बाबा, मेरे मन में एक बहुत बड़ा संशय है, आप मुझे बताइए कि रामतत्त्व क्या है? महाराज, यह राम कौन है? आप सत्यधाम है; आप सर्वज्ञ है। मुस्कुराए याज्ञवल्कजी और कहा कि महाराज, रघुपति की प्रभुता आपको विदित है। आप मूढ़ की तरह प्रश्न पूछते हैं क्योंकि आप गूढ़ चरित्र सुनना चाहते हैं! आप जैसा श्रोता मिले तो मैं जरूर रामकथा गाऊंगा। महाराज रामकथा का आरंभ भरद्वाजजी के सामने करते हैं। पूछा राम के बारे में और कथा शुरू की शंकर की। शिवचरित्र पहले गाया क्योंकि शिवचरित्र के बिना शायद रामचरित्र का अधिकार नहीं मिलता। शिव है द्वार रामंदिर का। परमात्मा के निजमंदिर में, परमात्मा के गर्भगृह में जाने के लिए शिवचरित्र नितांत आवश्यक है। वो द्वार बनता है। वहीं से रामकथा का प्रवेश होता है। इसलिए सेतुबंध किया, जोड़ा और समन्वय करते हुए याज्ञवल्क्यजी के मुख से फिर शिवचरित्र का आरंभ होता है।

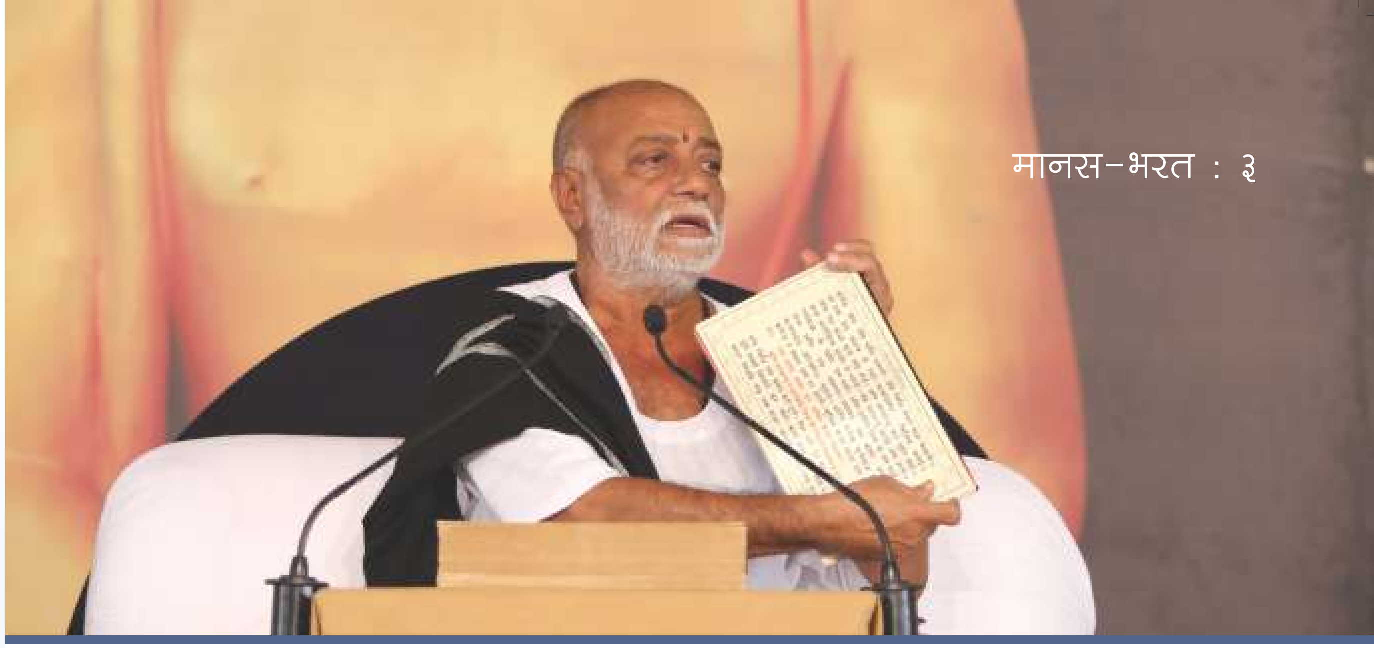

भरत का सबसे बड़ा तीक्ष्ण व्रत है प्रेमव्रत

'मानस-भरत', जो इस नवदिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु है। जिसको परिकम्मा करते हुए हम एक संवाद के रूप में भरतजी का दर्शन कर रहे हैं अथवा तो भरतजी का दर्शन क्या है, उसको समझने की कोशिश कर रहे हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, सबसे पहले मैं भरतजी के चरणों में प्रणाम करता हूं, जिसके नियम-व्रत को कोई कह नहीं सकता, वर्णन नहीं कर सकता। भगवान राम के चरण में जिसका मन सदा-सदा लुब्ध रहता है ऐसे श्री भरतजी को 'मानस'कार प्रणाम करते हैं। भरतजी के नियम-व्रत का वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसा गोस्वामीजी का वक्तव्य है -

जासु नेम व्रत जाहि न बरना।

प्रत्येक धर्म के अपने-अपने नियम होते हैं, अपने-अपने व्रत होते हैं। भरत का धर्मदर्शन क्या है? यद्यपि मैं फिर याद दिलाउं कि तीरथराज प्रयाग में याचक बनकर भरतजी ने ऐसा कहा है, जो हम सब जानते हैं। केवल स्मरण करें। इससे पहले मैं एक प्रसन्नता व्यक्त कर दूं कि कल सायंकाल को रामकथा के इस सात्त्विक मंच पर व्यासपीठ की छाया में एक नृत्य की प्रस्तुति हुई। बनारस के एक युवक ने टीम के साथ करीब डेढ़ घंटा जो नृत्य प्रस्तुत किया। सही में उसकी विद्या को मेरा नमन है। चित्रकूट में तो ऐसे नृत्य होने ही चाहिए क्योंकि यह भगवान की विहारभूमि है। किसी को पता न चले ऐसे भगवान राम ने रास का रिहर्सल तो यहां कर लिया था। मंचन कृष्णअवतार में किया। पता चल जाए उसको प्रोग्राम कहते हैं, पता न चले उसको प्रोग्रेस कहते हैं। इन्टर्नल डेवलपमेन्ट जिसको कहते हैं। प्रचार करके आप प्रोग्राम कर सकते हैं। किसी को पता न चले बात का यह है आंतरिक प्रोग्रेस। तो किसी को पता न चले ऐसे रिहर्सल इस भूमि पर हुआ था। यहां नृत्य हो, वो भी व्यासपीठ की छाया में, मुझे बहुत अच्छा लगा। 'शिवसूत्र' में एक सूत्र है, 'आत्मा नर्तकः।' भगवान शिव कहते हैं कि आत्मा नर्तक है। नृत्य तीन प्रकार से होता है। एक तो बहुत स्थूल, शारीरिक रूप में। उसकी भी बहुत महिमा है। दूसरा होता है मन से। 'लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।' मयूर का देह नृत्य कर रहा है 'मानस' के वर्षाऋतु के वर्णन में। राष्ट्रीय शायर झवेरचंद मेघाणी ने बहुत प्रचलित गीत 'मन मोर बनी थनगाट करे ...' लिखा। वैसे तो टागोर का गीत बेंगोली में है और मेघाणी ने उसको गुजराती में उतारा। लेकिन ऐसा सटीक उतारा कि कभी-कभी लगता है, टागोर ने गुजराती से बेंगोली में भाषांतर किया! तो देह से नृत्य होता है। मन से नृत्य होता है। आखिर में तो भगवान शिव कहते हैं 'शिवसूत्र' में, 'आत्मा नर्तकः।' व्यक्ति की आत्मा नाचते लगती है।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू।
आरत काह न करइ कुकरमू।।

एक राजर्षि भिक्षुक तीरथराज प्रयाग के आंगन में हाथ फैला रहा है। हम कलियुग में बैठे हैं लेकिन चित्रकूट में बैठे हैं।

चित्रकूट में कलिप्रभाव जरा कम है। थोड़ा अपनेआपको पीछे ले जाइए। वो त्रेतायुगीन मंज़र को देखिए। अयोध्या की प्रजा इधर-उधर त्रिवेणी के तट पर खड़ी है चुप। इधर माताएं है, गुरुजन है, ब्राह्मणदेवता है, सचिवगण है, नगर के नर-नारी सब खड़े हैं। और एक राजकुमार अपना स्वधर्म छोड़कर भरत कैसे खड़े थे वहां दोनों हाथ फैलाए! मुझे पता है, मैं क्षत्रिय का बेटा हूं। मैं मांग नहीं सकता। हमारा स्वभाव, हमारा व्रत होता है देना; भीख मांगना नहीं लेकिन मैं आज देने के बजाय मांगने के लिए आपके पास खड़ा हूं। निजधर्म छोड़कर खड़ा हूं। क्या शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करते हैं! भरतजी धर्मज्ञ है। भरतजी धर्मवेत्ता है। आखिर में तो गुरुदेव वशिष्ठजी ने जो प्रमाणपत्र दिया है, धर्मसार की जो बात कह दी। मैं आपसे निवेदन करने लगा कि भरत का जो धर्मदर्शन है, वो क्या है? यद्यपि भरत धर्म को छोड़ रहे हैं।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह वरदानु न आन।।

मुझे धर्म नहीं चाहिए, ऐसा कह रहे हैं। राजेश रेड्डी का एक शे'र है -

दिल एक बच्चे की मानिंद अडा बैठा है।
या तो उसको सब कुछ चाहिए या तो कुछ भी नहीं।

पूरा का पूरा धर्म का निचोड़ चाहिए भरत को, या तो एक भी धर्म नहीं चाहिए।

ज़िन्दगी तूने लहु लेके मुझे दिया कुछ भी नहीं,
तेरे दामन में क्या मेरे वास्ते कुछ भी नहीं।

इसलिए कबीर कहते हैं, पाना है तो पूरा पाना है, या रिक्त रहना है। 'कह कबीर मैं पूरा पाया।' मेरे तुलसी, गोस्वामीजी कहते हैं, 'पायो परम विश्राम।' भरत का जो धर्मदर्शन है, बड़ा अद्भुत है। बड़े-बड़े धर्माचार्य खो जाते हैं उसके धर्मदर्शन में! तो प्रत्येक धर्म के बिलग-बिलग नियम-व्रत होते हैं। हिंदुधर्म का, सनातन धर्म का हमको गौरव होना चाहिए। यह कोई एक समाज का धर्म नहीं है, वैश्विक धर्म है। जिस धर्म ने कायम कहा, 'सर्वे भवन्तु सुखिन:।'

मैं पहले दिन भी गा चुका, कल भी गाया, आज भी गाउं क्योंकि 'मानस' गाने का एक अनूठा आनंद है साहब! यह बच्चों ने जिसने अपने आप संकल्प किया है कि हम अपनी स्कूल बेग में 'मानस' रखेंगे, उसको कभी-कभी पढ़ना भी। न पढ़ो तो कोई चिंता नहीं। गाना भी, गुनगुनाना भी। कोलेज में पढ़ते युवक भाई-बहन भी अपने पास 'रामचरित मानस' रखे। मैं कहां कहता हूं कि आप तिलक करो, धोती पहन लो। आप जैसे हो मौज करो, लेकिन 'मानस' को मत भूलो इतनी ही अपेक्षा। 'रामचरित मानस' का गायन अद्भुत काम करता है। सत्यानंद महाराज ने 'रामचरित मानस' का बहुत प्रचार किया। आपने अपना एक अनुभव पेश किया था कि मैं एक गांव में गया 'रामचरित मानस' वितरण करने के लिए। घर-घर में 'रामचरित मानस' दूं, चाहे वो पढ़े न पढ़े। तो एक महिला कंडे थाप रही थी। स्वामीजी वहीं से गुजरे और कहा कि माताजी, कुछ लिखोगी, पढ़ोगी? तो कहा, स्वामीजी प्रणाम, पढ़कर क्या करना है? हमें तो यही करना है ना? यह गोबर लिपना है, कपड़े धोना है, रसोई करना है। हमारा तो यही काम है। इसीमें सब कुछ, जीवन पूरा! कोई बात नहीं। 'रामचरित मानस' रखोगे? लाओ बाबाजी, आप देते हैं तो रख देते हैं। 'मानस' लिया। सिर पर लगाया। रख दिया।

एक साल बाद स्वामीजी वहां से निकले तो महिला 'रामायण' पढ़ रही थी! क्योंकि 'मानस' पढ़ने के लिए उसने पढ़ना शुरू किया। शिक्षण और पढ़ाई का अभियान चलाना हो तो भी सरकार 'रामचरित मानस' घरघर में दे। बाकी का काम हम करेंगे। 'रामचरित मानस' जैसा बिनसांप्रदायिक कोई ग्रंथ नहीं। कुछ लोग जिनको समझ नहीं उसके लिए क्या कहे साहब! सार्वभौम शास्त्र है 'रामचरित मानस।' प्रत्येक विषय को समाविष्ट किए हुए है 'रामचरित मानस।' तो जब सरकारें हमारे पास आकर कहती है, किसी को भेजती है, संदेश आता है कि बापू को कहो कि मंच से कुछ अपने ढंग से कहे इसके बारे में जो राष्ट्रीय कार्यक्रम है। हम तो कहते ही हैं। पहले से कहते हैं। आपने तो अभी शुरू किया! महिलाओं का सशक्तिकरण, महिलाओं की जागृति की बातें। एक-दो पंक्तियों को पकड़कर अपनी बुद्धि की कसरत करनेवालों से मेरी प्रार्थना है कि किसी बुद्धपुरुष के चरणों में बैठकर पूरा 'मानस' एकबार सुन लो फिर बुद्धि की कसरत करो!

तो युवान भाई-बहन, 'नियम', 'व्रत' दो शब्द है। दोनों में अंतर है। आखिर में साधना की चरमसीमा पर एक हो जाते हैं। प्रारंभ में यह दो है, अंत में एक है। नियम उसको कहते हैं जो हम लेते हैं कि हम बिना नहाए भोजन नहीं करेंगे। बिना पाठ किए दफ़तर नहीं जाएंगे। हम दो या

तीन चीज ही खाएंगे। अपने-अपने नियम होते हैं। एक साधु का मत है कि नियम उसको कहते हैं कि जो हम लेते हैं अथवा तो तथाकथित धर्मगुरु हम पर लादते हैं। व्रत लिया नहीं जाता, कोई लाद नहीं सकता, अंदर से उठता है। व्रत भीतरी सर्जन है, नियम उपरी आरोप है। दोनों जरूरी है। नियम तो थोड़ा आसान होता है, सरल भी होता है, लेकिन व्रत बड़े तीक्ष्ण होते हैं। भरत के धर्मदर्शन में तीक्ष्ण व्रत कौन-कौन है? मैं मेरा पक्का करूं। आप सुनकर के आप भी अपने जीवन का दर्शन करें। पांच तीक्ष्ण व्रत है जीवन में।

युवान भाई-बहन, पांच व्रत जो तीक्ष्ण माने गए। एक सत्यव्रत। सत्य का व्रत अति तीक्ष्ण है। महात्मा गांधीजी, विश्ववंद्य गांधीबापू, उसकी निरंतर छाया में रहनेवाला आदरणीय महादेव देसाई, उसने कहा है कि इस सत्यव्रती गांधीबापू के साथ रहना एक फ़टे हुए ज्वालामुखी की ज्वाला के बीच में रहना है! कठिन से कठिन सत्यव्रत है। बहुत कठिन है। मेरा तो 'मानस' का बिलकुल निचोड़ यही है बस सत्य, प्रेम, करुणा। 'मानस' का आरंभ सत्य है। 'मानस' का मध्य प्रेम है। 'मानस' का समापन करुणा है। यह सत्य, प्रेम, करुणा तो हम सब जानते हैं। सत्य का व्रत तीक्ष्ण है, कठिन है, आसान नहीं है। लेकिन आसान हो भी सकता है। जैसे झूठ हमारे जीवन में आसान हो गया है! हम जैसे लोग स्वाभाविक झूठ बोलते हैं! यदि असत्य इतना सहज हो सकता है तो साधक के जीवन में सत्य उतना सहज नहीं हो सकता। कठिन में कठिन सत्यव्रत है।

मेरी व्यासपीठ मानती है सत्य के तीन नेत्र है। शिवरूपी धर्म के तीन नेत्र है-सत्य, प्रेम, करुणा। सत्य यह भगवान का त्रिपुंड है; विचारों का सत्य, उच्चार का सत्य और हमारे वर्तन का, आचरण का सत्य यह शिव का त्रिपुंड है। कई लोग सत्य बोलते हैं, आज भी बोलते हैं, प्रणाम। लेकिन दूसरे के सत्य को कुबूल नहीं कर पाते हैं! जलन होती है! पीड़ा होती है! जानते हैं, यह आदमी सच्चा है, लेकिन कुबूल नहीं कर पाएंगे! सत्य बोलते-बोलते जो जा चुके हैं उनका नाम लेंगे, वर्तमानवाले का नाम नहीं लेंगे क्योंकि उसको एक जलन, एक द्वेष, एक पीड़ा है! मैंने यह अनुभव किया है दुनिया में! सत्य को बोलते हैं, दूसरे का सत्य स्वीकार करना यह तीक्ष्ण व्रत है। और आपके सत्य को दूसरा स्वीकार न करे वो आपसे थोड़ा द्वेष रखें, माईन्ड न करो।

तो युवान भाई-बहन, आप समझ तो ले बाप! सत्य का निर्वहन हम कर सके न कर सके, गंभीर रहे, लेकिन इतना सोचे जरूर कि सत्यव्रत बड़ा तीक्ष्ण है, विषम है। यह कलियुग है साहब! मैं कथाओं में कहता हूं कि पूरा-पूरा सत्य हम लोग नहीं बोल पाते हैं जीवन में। व्याख्या होती है; करना कठिन है। लेकिन जितनी मात्रा में सत्य हमारे जीवन में हो, जीवन धन्य होगा। शत प्रतिशत न हो, जितनी मात्रा में हो। जितनी मात्रा में हम सत्य के करीब होते हैं साहब, विषम व्रत को हम धीरे-धीरे निर्वहन कर सकते हैं। एक तो यह सत्यव्रत भरत के जीवन का।

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।

धर्म के जितने-जितने लक्षण है; मनु महाराज ने दस लक्षण बताए धर्म के और धर्मरूपी वृषभ के चार चरण; गोस्वामीजी उसको इस रूप में स्थापित करते हैं; दया, दान, शौच, तप आदि-आदि जो चरण; अब 'मानस' की पंक्तियों से आप भरत का दर्शन करें तो प्रत्येक धर्म भरत में बिराजमान है। प्रत्येक धर्म का आश्रयस्थान भरतजी है। और तत्त्वत: एक ही लक्ष्य है, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' तो मेरे भाई-बहन, विषम व्रत में सत्यव्रत बहुत कठिन है लेकिन मुझे लगता है, यह सहज हो सकता है कि आदमी बोले सो निहाल। भजन करने के बाद संतों को तो ऐसी अनुभूति होती है कि सत्य ही बोले वो नहीं, जो बोले वो सत्य हो जाता है। जिसको साधनापद्धति में वचनसिद्धि कहते हैं।

दूसरा कठिन व्रत है मौनव्रत। मौन रहना बहुत कठिन है। पहले नियम के रूप में मौन रखो। फिर वो व्रत बन जाए अल्लाह करे। सहज मौन। ओशो ने लाओत्सु के बारे में ही कहा है। लाओत्सु चीन का इतना बड़ा दार्शनिक, बुद्ध के काल का आदमी। वो सुबह-सुबह मोर्निंग वोक करता है। आज यहां कामना नाथ में भी सुबह-सुबह कितने लोग मोर्निंग वोक करते हैं! लेकिन परिकम्मा करो तो जप करते-करते या मौन रहकर करना। मौनव्रत कठिन है। कई लोग अकारण बहुत बोलते रहते हैं! फलां ऐसा हो गया! दुनिया में ऐसा हो गया! छोड़ ना। तू हरि भज ना। जितना हो, सम्यक् बोलो। मौन बहुत प्यारी चीज़ है। जिसको अंतर्मुख होना है उसको मौन बहुत मदद करता है। जिन्होंने मौन को आत्मसात् कर लिया है उनके अनुभव है। मौन के आरंभ में बाहर की आवाज़ बहुत आएगी। आप बोलेंगे तो बाहर की आवाज़ नहीं आएगी। आरंभ है मौन का बाहर की आवाज़ें बहुत आती है। मध्य है मौन का बाहर की आवाज़ नहीं आती, लेकिन भीतर से आवाज़ें उठती है। आखिर,

अंत, शिखर है मौन का कि आंतरिक आवाज़ और बाहरी आवाज़ दोनों बंद हो जाती है और साधक में एक सन्नाटा छा जाता है। और इस सन्नाटे में यदि समर्थ गुरु का आश्रय न हो तो आदमी के पागल हो जाने की संभावना होती है। इसलिए स्विच सद्गुरु रखता है, क्योंकि सन्नाटा सहने की हमें आदत नहीं। हमें कोलाहल प्रिय है! हम उहापोह में जीनेवाले लोग हैं! हम कोलाहल प्रिय हो गए हैं! शोरप्रिय हो चुके हैं हम!

तो मेरे भाई-बहन, धर्मज्ञ भरत के जीवनदर्शन के कुछ जो नियम-व्रत है उसमें दूसरा व्रत है मौनव्रत। यह पांच व्रत, भरत की जीवनयात्रा में कहां-कहां इसका प्रयोग किया इसके बिंदु आपको मिलेंगे। सत्यव्रत का प्रयोग कब हुआ? मौनव्रत का प्रयोग कब हुआ? तो मैं लाओत्सु की बात कह रहा था कि वो मोर्निंग वोक करते थे तो एक भाई आया कि मेरे घर एक भाई आया है। आप कहे तो सुबह-सुबह साथ-साथ चलेंगे मोर्निंग वोक में। लाओत्से ने कहा, बोले नहीं तो साथ में लेना। बाकी बोलबोल करे तो मेरे साथ मत लेना! तेरा भी नंबर कट जाएगा! नहीं बोलेगा। उसने मेहमान को कह दिया, लाओत्सु के साथ सुबह-सुबह यात्रा करनी है। बोलना मत। दो-तीन माइल की मोर्निंग यात्रा थी। संपन्न की। आखिर में थोड़ी दूरी पर वो है। पांच मिनट में अभी यात्रा पूरी हो जाएगी। उतने में वो मेहमान इतना बोला, 'लाओत्सुजी, सुबह बहुत सुंदर है!' कुछ बोले नहीं लाओत्सु। अपनी कुटिया पर जाकर उसके आश्रित को कहा कि तेरे मेहमान को कभी मेरे साथ चलने में लाना मत क्योंकि बहुत बोल-बोल करता है! बेचारा बोला था, सुबह बहुत सुंदर है। उसने कहा, बाबा, इतना ही बोला था, सुबह बहुत सुंदर है। सुबह सुंदर थी, बोलने की क्या जरूरत थी? एन्जोय कर ना! यह है तीक्ष्णव्रत, मौनव्रत।

मैं युवानों को नहीं कहता कि आप मौन हो जाओ, लेकिन युवानों के माता-पिता जो करीब पचास-साठ के आसपास हो गए हैं उनको जरूर कहूं, हफ्ते में एकाद बार मौन रहो। शुरूशुरू में थोड़ा प्रेक्टिकल भी रहो। घर में ऐसी नोबत आए और व्रत तोड़ना पड़े तो तोड़ भी दो। भरत ने व्रत तोड़ा भी। जड़ मत हो जाना। हम संसारी है बाप! घर में ऐसी कोई घटना घट जाए, बोलना पड़े तो बोले। मैं तो वहां तक कहता हूं कि आप मौन है, अखंड मौनी है लेकिन कोई बच्चा तुम्हारे पास आ जाए, मुस्कुराए, तुम्हारी गोद में आ जाए और वो चाहे कि आप बोलो तो बच्चे के साथ बोलना। ये बच्चे के साथ बोलना नहीं है, ब्रह्म के साथ बोलना है। क्यों तुलसी ने बाल राम को पसंद किया?

आज मुझे एक प्रश्न पूछा गया है कि आप परमात्मा राम को मानते हैं या दशरथजी के पुत्र राम को? मैं बिलकुल दो-टूक दुनिया को कहना चाहता हूं, मैं दशरथ के बेटे राम को ही परमात्मा मानता हूं। जो शंकर का परमात्मा है, भुशुंडि का है वो मेरा है। जब रामकथा का आरंभ हो रहा था, उस समय पार्वती ने बिनती की कि रामकथा आप मुझे सुनाओ और भगवान शंकर ने सबसे पहले किसकी स्मृति की? 'मंगल भवन अमंगल हारी।' ब्रह्म राम? आत्मा राम? वेदांतियों का राम? नहीं। 'द्रवउं सो दशरथ अजिर बिहारी।' राम तो निराकार ब्रह्म है। लेकिन हमारा राम तो जो बालक है वो परब्रह्म है, परमात्मा है। भगवानों का भगवान है। कोई बच्चा आप से बात करे तब उस वक्त मौन पकड़ रखने की जरूरत नहीं; उससे बात करो, बोलो। तो मेरे भाई-बहन, मुझे कई लोग, उम्रवाले पूछते हैं, बापू, जन्मदिन आए तो क्या करना चाहिए? इतने बूढ़े होने के बाद केक काटो, शोभा नहीं देता। अब क्रोध काटो। जितने साल की उम्र होती उतने दिन का मौन रखो या तो इतने घंटे का मौन रखो। जब जन्मदिन आए तब मौन पूरा हो जाए ताकि परिवारजनों के साथ आप बोल भी सको। सब राजी हो जाए। मौनव्रत यद्यपि विषम है, लेकिन कोई बहुत विरोध करे ऐसी परिस्थिति में भी मौनव्रत धारण करो जो भरत ने धारण किया है।

भरत का जीवनदर्शन जो है उसमें विषम व्रत में जो तीसरा है वो है ब्रह्मचर्य व्रत। बहुत कठिन व्रत है। लोग भले कहलाते हो कि हम ब्रह्मचारी है, लेकिन वास्तविकता में कुंआरे होते हैं। ब्रह्मचारी तो हुआ मेरा हनुमान। ब्रह्मचारी निकला त्रेता में परशुराम। ब्रह्मचारी तो है नारद। 'ब्रह्मचर्य व्रत संजम धीरा।' ब्रह्मचारी द्वापरयुग में पितामह भीष्म है। कलियुग में भी कई ब्रह्मचारी हुए। विनोबाजी कहते हैं कि मेरा संयम बरकरार है। महामुनि की बात मानने में मुझको मुश्किल नहीं है। गांधीजी तो प्रयोग करते थे, संयम की बड़ी परीक्षा खुद पर करते थे। छोड़ो यह बात, यह गांधी कर सकते हैं। तीक्ष्ण व्रत है, बहुत कठिन है। कृष्ण कह सकता है कि मैं बालब्रह्मचारी हूं, इतनी

रानियों के बीच में रहते हुए भी! दुर्वासा इतना भोजन करने के बाद भी कह सकता है कि मैं उपवासी हूं। बाकी यह मुश्किल है।

चौथा व्रत अचायक और अकिंचन व्रत बहुत कठिन है। किसी के पास कभी याचना न करना; याचना करने का विचार भी न उठना। उपर से हम किसी से याचना नहीं करते लेकिन दूसरी ओर से हम ग्रहण कर लेते हैं! अयाचक व्रत था कृष्णसखा सुदामा का। अयाचक वृत्ति एक ब्रह्मविद् ब्राह्मण ने कुछ मांगा नहीं। लेकिन आप कथा से परिचित हैं कि सुदामा के घर समृद्धि से सबकुछ भर दिया! मेरे राम, मेरे कृष्ण का यही तो आलौकिक कर्तव्य है कि 'कर बिनु कर्म करे बिधि नाना।' सुदामा जब पहुंचता है तो बड़ी-बड़ी हवेली देखता है! यह तो सुंदर रोचक बनाने की बात है, बाकी कृष्ण को आशीर्वाद देने का जिसको अधिकार मिल जाता है वो गरीब कैसा?

युवान भाई-बहन, भरत का चौथा व्रत है अयाचक व्रत। यद्यपि तीरथराज से मांगते हैं, लेकिन एक ऐसा याचक तीरथराज के द्वार आया कि जिसके पास गोस्वामी के शब्दों में 'चारी पदारथ भरा भंडारा' है। उस चारों पदारथ से भरे भंडार में धर्म है, अर्थ है, काम है, मोक्ष है; चारों पदारथ है। लेकिन उसके द्वार पर एक अयाचक ऐसा आया। कभी कोई बुद्धपुरुष किसी से मांगेगा नहीं, लेकिन कोई बुद्धपुरुष तुम्हारे पास कोई याचना करे कि जरा यह काम कर दो; उसी दिन समझना कि तुम्हारे हाथ में, तुम्हारी मुट्ठी में मोक्ष आ गया। मुक्ति तुम्हारे हाथ की किंकरी बन जाए। अयाचक व्रत बड़ा विषम व्रत है।

सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को।।

पहला सत्यव्रत, दूसरा मौनव्रत, तीसरा ब्रह्मचर्यव्रत, चौथा अयाचकव्रत और सबसे विषम आखिरी व्रत है भरत का प्रेमव्रत। 'रघुपति भगति करत कठिनाई।' तीक्ष्ण से तीक्ष्ण व्रत कोई हो वो है प्रेमव्रत। कल का सूत्र भूलिएगा मत मेरे भाई-बहन, भय से भक्ति मत करना, लेकिन आ जाए तो जिसकी करते हैं उसका थोड़ा भय रखना कि 'कहीं दाग न लग जाए।' यह बिलकुल उलटा सूत्र। कहीं दिमाग से निकल न जाए। यह बड़ा विषम व्रत है प्रेम। पुष्टिमार्ग में कृष्णपरंपरा में, वल्लभपरंपरा में, अष्ट सखाओं के पदों में व्रजांगना गोपीयों को प्रेम की ध्वजा कही। गोपी प्रेम की ध्वजा है लेकिन इस प्रेम की ध्वजा को फहराने की हवा है वो 'रामायण' का भरत है। वो फहराता है वर्ना चिपक जाती। आज विश्व में प्रेम की ध्वजा फहर रही है तो 'रामचरित मानस' के भरत की देन है। यह प्रेमव्रती है। 'पुलक गात ...' एक पंक्ति में यदि प्रेम की फोर्म्यूला; एक छोटी-सी डिब्बी में पूरा प्रेमशास्त्र देना है तो यह पंक्ति पढ़िए।

प्रेमव्रती कैसा होता है? उसकी अवस्था कैसी होती है? 'मानस'कार कहते हैं, भरत के प्रेमव्रत की कसौटी तो तब आई कि जब पादुका लेकर लौट आए। पादुका की स्थापना की गई। पादुका को पूछपूछकर राजकाज कर रहे हैं श्री भरतजी। भगवान वशिष्ठजी के चरणों में प्रणाम करते हुए आज्ञा मांगते है कि 'गुरुदेव, आप कहे तो मैं नंदिग्राम में निवास करूं?' 'भरत!' 'हां प्रभु।' वशिष्ठजी ने कहा, 'भरतजी, हम धर्म के व्याख्याता है। धर्मग्रंथों के सृजाता भी है। हमारे नाम से संहिताएं चलती है, लेकिन आज पहली बार हमको पता लगा कि आप जो करते हैं, जो कहते हैं, जो सोचते हैं वो धर्म नहीं है भरत, धर्म का सार है। इसलिए आपकी सोच, आपका चिंतन आप जो कहेंगे वो धर्म का निचोड़ होगा। लेकिन मेरी व्यासपीठ को इस प्रेम की कसौटी तब आई जब

भरत के धर्मदर्शन में तीक्ष्ण व्रत कौन-कौन है? एक सत्यव्रत। सत्य का निर्वहन हम कर सके न कर सके, लेकिन इतना सोचे जरूर कि सत्यव्रत बड़ा तीक्ष्ण है, विषम है। दूसरा कठिन व्रत है मौनव्रत। मौन रहना बहुत कठिन है। कई लोग अकारण बहुत बोलते रहते हैं! धर्मज्ञ भरत के जीवनदर्शन का दूसरा व्रत है मौनव्रत। उस विषम व्रत में जो तीसरा है वो है ब्रह्मचर्य व्रत। बहुत कठिन व्रत है। लोग भले कहलाते हो कि हम ब्रह्मचारी है, लेकिन वास्तविकता में कुंआरे होते हैं। भरत का चौथा व्रत है अयाचक व्रत। और सबसे विषम आखिरी व्रत है भरत का प्रेमव्रत। तीक्ष्ण से तीक्ष्ण व्रत है प्रेमव्रत।

वशिष्ठजी ने कह दिया कि भरत, मेरी ओर से कोई प्रतिबंध नहीं है। आप नंदिग्राम में तापस बनकर, भेख लेकर निवास कर सकते हैं, लेकिन रामजननी के आशीर्वाद और आज्ञा लो। क्योंकि भरत, एक बात मैं बता दूं कि रामजननी तुम्हारे नंदिग्राम निवास से यदि नाराज हो तो मत जाना वर्ना रामभक्ति सफल नहीं होगी। आपको जानकारी होनी चाहिए भरत कि रामजननी जीवित बैठी है तुम्हारे कारण। और आप तो रोज जाते हैं माँ के पास। बहुत से मत है वहां। सबका अपना-अपना एक भरत होता है, होना चाहिए। जैसे वाल्मीकि का एक भरत है वैसे 'रामचरित मानस' का भी एक भरत है। मेरा भी एक भरत हो सकता है। यह हम सबको अधिकार है।

मैंने कभी कहा था कुछ साहित्यकारों के बीच भी कि मेरा शत्रुघ्न 'रामचरित मानस' में मौन है, कोई उसको बोलता तो करो! आप सब साहित्य के जगत में हो, कोई शत्रुघ्न पर एक कविता तो लिखो! कोई बुलाओ, उसकी चुप्पी तोड़ो। कल एक युवान शायर दिल्ही से आया जिसने ग़ाज़ियाबाद के मुशायरे में उस्तादों की पंक्ति में कुछ गज़लें पढ़ी थी और तालियां बटोर गया था। वो कल अचानक मुझे मिलने आ गया शाम को। उसने कहा, बापू, आपने कहा था, मैंने आपके शत्रुघ्न को बोलता किया है। मैंने कुछ बुलवाया है। एक लंबी कविता मुझे दे गया। यद्यपि उसकी सब बातों से मैं सहमत न भी हो सकूं क्योंकि मेरा अपना शत्रुघ्न है। लेकिन उसने विचार को तो पकड़ा। 'तो भरत, आपकी भक्ति की कसौटी अब है। माँ कौशल्या यदि हां कह दे तो जाओ। रामजननी का जीवन तू जानता है।'

श्री भरतजी आते हैं। माँ को प्रणाम किया। 'बेटे।' पहला प्रश्न, 'गुहराज ने आज का कोई संदेश भेजा है कि तीनों कैसे है वन में?' डाकिया का काम करता था गुह बीच में। रोज की रामकथा चित्रकूट से आती थी। आज प्रभु ने यह किया, आज प्रभु ने यह किया। 'आज की खबर आई भरत?' 'सब कुशल है माँ, दुःखी मैं हूं।' 'भरत, ऐसा बोलना कब बंद करोगे?' 'माँ, एक बात कहने आया हूं।' 'बोलो।' 'माँ, मुझे खबर है मैं यह बात करूंगा तो तेरी स्थिति क्या होगी लेकिन मेरा जनम ही तो तुम्हें दुःखी करने के लिए हुआ है!' 'फिर वो ही बात!' 'माँ! आप आशीर्वाद दे, गुरु ने तो हां कह दी; तो मैं तापस बेश लेकर नंदिग्राम में निवास करूं? यदि तू कहे तो मैं नंदिग्राम रहूं। क्योंकि मेरे प्रभु और मेरी माँ और भैया लखन वन में निवास करें। मैं भवन में कैसे रहूं?' प्रेमव्रत की यह तीक्ष्णता है। अब माँ की समझ देखिए। कौशल्या, कौशल्या है। मेरे गोस्वामीजी ने अद्भुत न्याय दिया। कौशल्याजी को महिला नहीं कहा। तुलसी ने कहा, 'बंदऊ कौसल्या दिसी प्राची।' कौशल्या पूर्व दिशा है। व्यक्ति नहीं है; यह पूर्व का प्रकाश है। यह 'उगमणा ओरडावाळी' है कौशल्या। यह आदि सोनलमाँ है। यह महिला जगत की महिमा है। केवल एक व्यक्ति नहीं है कौशल्या। जिस दिशा में चंद्र उदय होता है, जिस कौशल्यारूपी पूर्व दिशा ने रामरूपी चंद्र जगत को दिया है -

बंदऊ कौसल्या दिसी प्राची। किसी जासु सकल जग माची।
प्रगटेऊ जहं रघुपति रसी चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू।।

शिष्टाचार का विवेक और शरणागत तपस्वियों का विवेक बिलग होता है। शिष्टाचारियों का विवेक कहता है कि तुम्हें कोई पानी दे तो पहले बगलवालों को ओफर करो। लेकिन तापस, समर्पित साधक का विवेक यह होता है कि जहर आए, उसके हाथ में जाए उससे पहले खुद पी ले। ज़हर कोई दे तो पहले ओफर नहीं की जाती पडोसी को कि पहले आप। यह तापस का शिष्टाचार नहीं है। वो खुद पीना होता है, जुटकर पीना होता है। कौशल्या ने मन में निर्णय कर लिया कि भरत को यदि उनकी इच्छा के अनुकूल करने न दूंगी तो भरत मेरे हाथ से चला जाएगा। और राम आने के बाद मुझे पूछे कि माँ, मेरा भरत कहां है? क्या मैं भरत के बगैर अयोध्या देखने के लिए लौटा? इस प्रेमव्रती को जीवित रखने के लिए वो जैसा चाहे वैसा करने देना चाहिए। 'भरत, बेटे, नंदिग्राम में तपस्वी बनकर रहकर, तेरी आत्मा को ज्यादा अच्छा लगता हो तो जाओ बेटा।'

खुश रहो हर खुशी है तुम्हारे लिए।
छोड़ दो आंसूओं को हमारे लिए।

'तेरी रामभक्ति सफल हो।' भरत को आज्ञा मिल गई, आशीर्वाद मिल गया। यह था भरत का विषमव्रत, प्रेमव्रत। तो बाप! धर्मज्ञ भरत के पांच विषम व्रत-सत्यव्रत, मौनव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, अयाचकव्रत और तीक्ष्ण से तीक्ष्ण प्रेमव्रत। किस-किस जगह पर इस व्रत का उपयोग हुआ है, उसकी चर्चा मेरी व्यासपीठ कल करेगी। आज मुझे क्षमा करिएगा, मैं कथा यहां पूरी करता हूं। मेरे लिए आगे बढ़ना मुश्किल है। मुझे लगता है कि इसी भाव में, इसी धारा में यहां कथा रोकूं। लेकिन इससे पहले कुछ समय हरिनाम का आश्रय करे क्योंकि आखिर तो एक मात्र हरिनाम का आश्रय है। तो आखिर में प्रिय प्रभु का नाम ही सहारा होता है।

मानस-भरत : ४

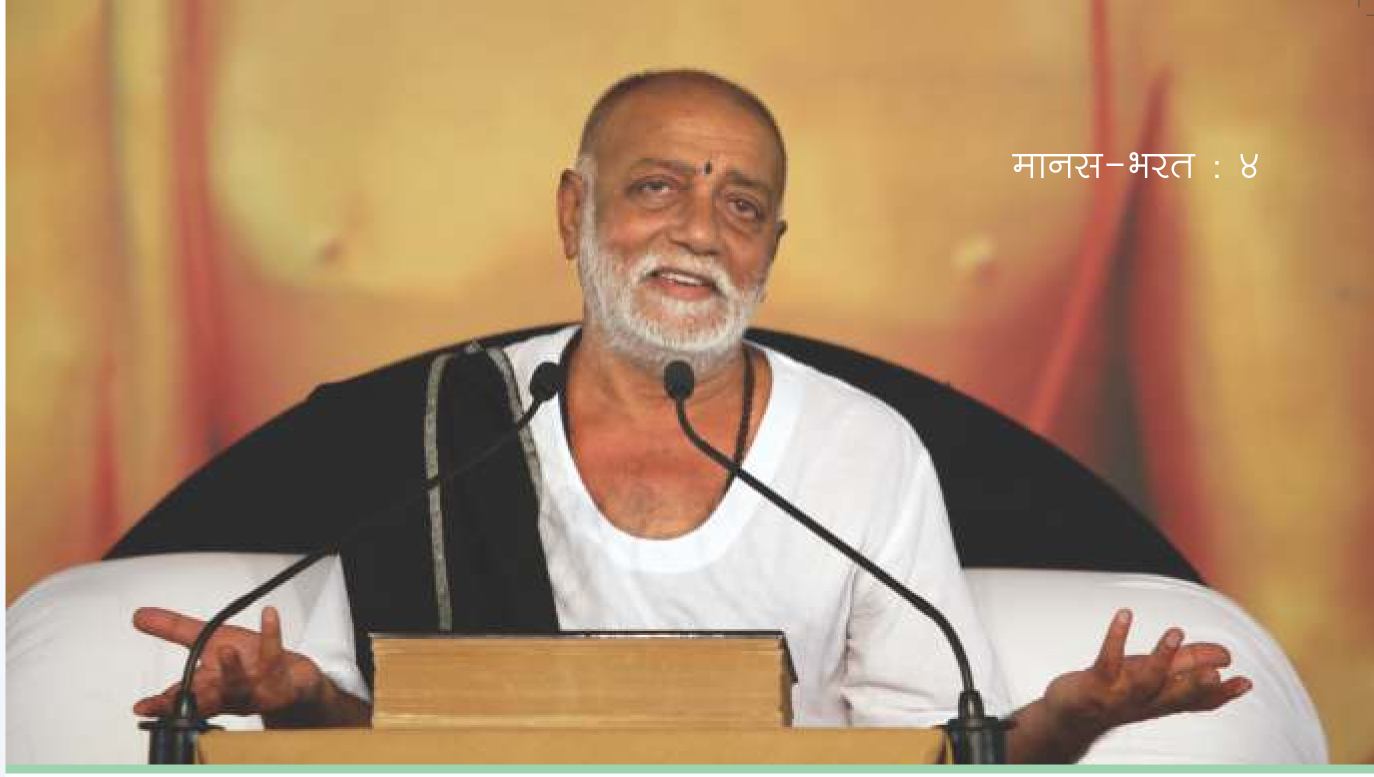

भरतजी की यात्रा अयोध्या से चित्रकूट की है, हनुमानजी की यात्रा किष्किन्धा से त्रिकूट की है

'मानस-भरत', जिसकी मुख्य रूप में संवादी चर्चा चल रही है। प्रसंग के अनुरूप बहुत-सी जिज्ञासाएं भी है। यथासमय, यथाअवकाश मैं कोशिश करूं। एक प्रश्न तो यह रहा कि नियम और व्रत में अंतर क्या है? कुछ अंतर जरूर है। नियम उसको कहते हैं कि आप और हम कोई नियम लेते हैं तो कुछ अवधि के लिए लेते हैं। सावन महिना है तो एक महिने का हम उपवास या मौन का नियम लेते हैं कि एक बार भोजन करना है और यह जो मन में निर्णय होता है वो पूरा होने के बाद नियम का पारणा भी होता है। जैसे कभी विश्ववंद्य गांधीबापू राष्ट्र की गतिविधि के कारण एक बात पकड़ लेते थे कि मुझे सत्याग्रह करना है। एक नियम ले लेते थे कि मुझे बैठ जाना है, जब तक यह न हो। और जब यह हो जाता है फिर वो अपने अनशन का पारणा कर लेते थे। माताएं, बहनें गौरीव्रत करती हैं; कई प्रकार के व्रत करती है। एक नियम लेती है और फिर वो पूरा होने के बाद गुजराती में कहते हैं कि 'उजवणा', उसका समापन करते हैं। गोस्वामीजी ने भी नियम के बारे में ऐसा संकेत दिया है।

तापस तप फल पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु।

चित्रकूट का दर्शन भरतजी ने किया। यह मंज़र बड़ा प्यारा है। 'तब केवट ऊंचे चढ़ी धाए।' भरत की यात्रा का बहुत समझदार मार्गदर्शक गुरु केवट है, निषादराज है। मैं युवान भाई-बहनों को कहूं कि जिसमें पांच लक्षण हो ऐसे को जीवन में मार्गदर्शक बनाना। ऐसे गाईड को जीवन में रखना और उसके मार्गदर्शन पर यात्रा करना। यह चित्रकूट की यात्रा केवल भरत की ही यात्रा नहीं है; हम सबकी यात्रा है। प्रधानरूप में मेरी व्यासपीठ तीन यात्रा का जिक्र कर सकती है। एक तो भगवान राम की यात्रा। राम का जो अयन है उसको हम 'रामायण' कहते हैं; जो गति है वो अयोध्या से शुरू होती है। जनकपुर तक की हो जाती है। फिर चौदह साल की वनयात्रा जो है उसका एक-दो दिन का पडाव बीच में करते-करते करीब साढ़े ग्यारह या बारह साल तक भगवान चित्रकूट में रहे। फिर भगवान की यात्रा पंचवटी की ओर जाती है; दंडक वन की ओर जाती है। फिर प्रभु की यात्रा किष्किन्धा की ओर जाती है। फिर भगवान की यात्रा सेतुबंध के द्वारा लंका तक जाती है। फिर लंका से लौटकर हवाइ मार्ग से राम की यात्रा अवध में पूरी होती है। वैसे एक-दो यात्रा पर साधकों का खास ध्यान रहना चाहिए। वो महत्त्व की यात्रा 'मानस' में है। वह दो यात्रा युवानों को बहुत बल दे सकती है। एक हनुमानजी की यात्रा है। एक यात्रा श्री भरतजी की है। भरतजी की यात्रा अयोध्या से लेकर चित्रकूट और चित्रकूट से अयोध्या तक चलती है। हनुमानजी की

यात्रा किष्किन्धा से शुरू होती है, लंका तक जाती है और फिर किष्किन्धा में पूरी हो जाती है।

भरतजी की यात्रा अयोध्या से चित्रकूट की है, हनुमानजी की यात्रा किष्किन्धा से त्रिकूट की है। लंका मानी त्रिकूट। भरतजी की यात्रा का लक्ष्य चित्रकूट है; हनुमानजी की यात्रा का लक्ष्य त्रिकूट है। दोनों की यात्रा में बहुत साम्य है। हनुमानजी की यात्रा में भी मार्गदर्शक कई है, सलाहकार कई है। जैसे जामवंतजी उसको आवाहन करते हैं। संपाति भी उसके मार्गदर्शक बन जाते हैं। वो तपस्विनी स्वयंप्रभा भी मार्गदर्शक है। श्रीहनुमानजी की यात्रा के एक मार्गदर्शक विभीषणजी भी है। रामजी की यात्रा में भी मार्गदर्शक भरद्वाजजी के चार शिष्य है जो मार्ग दिखाने के लिए जाते हैं। राम की यात्रा में वाल्मीकि भी निर्देशक रहे कि कहां रहे। उसने सीधा चित्रकूट निर्देश कर दिया। भगवान राम की यात्रा में कई ऐसे पड़ाव है। कुंभज भी मार्गदर्शक है जिससे मंत्र लिया गया। शबरी भी मार्गदर्शक बनी है जो पंपासरोवर की यात्रा करने के लिए सूचित करती है।

तो बाप! खास करके हम जैसे जीवों के लिए मार्गदर्शक कैसा चाहिए? खास करके मैं युवानों को संबोधन करूं तब पांच वस्तु देखना बच्चों। एक ऐसे गाईड को साथ में रखना जो चतुर कम हो, समझदार ज्यादा हो। दुनिया की रीत रसम ऐसी है, आज-कल थोड़ी होशियारी की जरूरत पड़ती है। लेकिन थोड़ी मात्रा में चतुराई हो तो स्वीकार बाकी समझदार हो उसको अपना गाईड बनाना। मेरी दृष्टि में शृंगबेरपुर का केवट चतुर कम है, समझदार बहुत है। मैं तो वहां तक समाज में आवाहन करूं कि जो बहुत चतुर हो उसके साथ बैठना टालो।

दूसरा, ऐसे मार्गदर्शक की छाया में जीवन की यात्रा, चित्रकूट की यात्रा हो जो भूल कुबूल करता हो। मैं समाज में देखता हूं। मेरे इर्द-गिर्द भी देखता रहता हूं। यद्यपि भगवन् नाम की कृपा से मैं असंग रहने में सफ़ल होता जा रहा हूं। लेकिन मेरे इर्द-गिर्द लोग भूल कुबूल करने के लिए ही तैयार नहीं है! उसका अपमान मत करो, लेकिन उसके संग यात्रा मत करो। समाज में कई ऐसे मिलेंगे उसकी भूल कभी हो ही नहीं सकती बस! इस दुनिया में कोई आदमी ऐसा होता है कि जिसमें कमजोरी न हो? थोड़े साधु-संतों को छोड़कर कहूं, कौन चूक नहीं करता? कौन दूध के धोए हैं? सोचो, लेकिन कुछ लोग अपनेआप में इतनी चतुराई करते हैं कि मेरी भूल हो ही नहीं सकती! चतुर कम, समझदार ज्यादा हो, यात्रा में उसको आगे रखो। जो अपनी भूल कुबूल करे कि मेरी चूक यहां हो गई, क्षमा करे। उसको यात्रा में साथ रखो। तीसरा, जिसके जीवन में नियम कम हो, व्रत ज्यादा हो। हम नियमवाले बहुत हैं! तापस को जैसे तप फल मिल जाता है और तप के फल का सुख मिलता है फिर वो नियम को विसर्जित कर देता है। व्रत उसको कहते हैं जिसको विसर्जित नहीं किया जा सकता। सत्य का विसर्जन हो सकता है? व्रत करीब-करीब शाश्वत है। चिरंजीवी है, दीर्घायु है इसको व्रत कहते हैं। मैंने पांच विषम व्रत की भरत को केन्द्र में रखते हुए कल आपके सामने चर्चा की थी उसमें एक-एक व्यक्ति आप उठाओ तो सत्यव्रती है राम। प्रेमव्रती है भरत। मौनव्रती है शत्रुघ्न। ब्रह्मचर्यव्रती है मेरा लक्ष्मण। और अयाचकव्रती है मेरी माँ जानकी जो देना ही जानती है, जो देती ही रहती है।

तो मेरे भाई-बहन, नियम तो ऐसा किया जा सकता है। व्रत शाश्वत होता है। जिसके जीवन में नियम के बंधन कम हो। बेडी सोने की हो तो भी बेडी बेडी है, बंधन ही है। नियम बंधन रख देता है, व्रत स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह अंतर है। ऐसे पहुंचे हुए किसी व्यक्ति के मार्गदर्शन में चित्रकूट की यात्रा कीजिए। चौथा, हेतुरहित व्यक्ति का मार्गदर्शन लेना। तुम्हें गाईड करने में उसका कोई हेतु न हो, कोई स्वार्थ न हो। ऐसे होते हैं गुरुजन जिसको हमारे पदों में गाया गया है, 'संत परम हितकारी...' उसका कोई स्वार्थ नहीं है। पांचवां और अंतिम मार्गदर्शक का वरण करना कि जिसके मार्गदर्शन में जीने से मन विचार कम करे, बुद्धि का भटकना कम हो जाए। बुद्धि में बार-बार विक्षेप हो तो मात्रा कम हो जाए। और अहंकार की गुंजाइश रहे ही ना ऐसे मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में युवान भाई-बहन, यात्रा करना।

तो जो पूछा गया है उसीमें जोड़कर एक दूसरा प्रश्न है, बापू, चित्रकूट का वन और वृंदावन में साम्य क्या है और अंतर क्या है? कुछ अंतर है मेरी समझ में। साम्य ज्यादा है। सबसे पहला साम्य तो यह है मेरे श्रोता भाई-बहन कि वृंदावन में ऐसा कहा गया है और सही भी है, 'वृंदावन परित्यज्यम् पादमेक न गच्छयति ...' आज भी वृंदावन का एक अटल सिद्धांत है कि भगवान कृष्ण वृंदावन को छोड़कर एक कदम भी कहीं गए नहीं। लीला में मथुरा गए। फिर खबर नहीं कहां-कहां की यात्रा की! लेकिन वृंदावन की यह मान्यता है कि एक कदम भी वृंदावन को

छोड़कर प्रभु कहीं गए नहीं। वृंदावनवासी मानने को तैयार ही नहीं कि हमारा गोविंद कहीं गया है।

वृंदावन में रास है, यहां चित्रकूट में रस है। लेकिन माफ़ करिएगा, वृंदावन का रूप वन का नहीं रहा, नगर का हो चुका है। है ना? और हम भाग्यवान है कि चित्रकूट का रूप अभी भी कामदवन के रूप में अक्षुण्ण है। वहां तो बिल्डिंगें है। यहां भी बिल्डिंग बने, मैं मना नहीं करता। लेकिन मूल में जो स्वाभाविक चित्रकूट है वो रहना चाहिए। मैं आप से तो निवेदन कर सकता हूं मेरे भाई-बहन, आप मंदाकिनी में स्नान करो तो साबून से न नहाओ। बिलग-बिलग केमिकल से तुम्हारे बाल धोने का नहीं। मंदाकिनी तो तुम्हारे विकृत विचारों को धोने के लिए है। उसके तट पर कपड़े मत धोओ, दूसरी जगह धोओ। मंदाकिनी तैरने की जगह नहीं है, डूबने की जगह है। डूबने की जगह मतलब आपघात की बात नहीं है। उसकी गहराई में जाकर। मंदाकिनी क्या है? तुलसी की दृष्टि में रामकथा की मंदाकिनी है। 'रामचरित मानस' मंदाकिनी है। यह तैरने के लिए तुलसी ने दिया नहीं है, डूबने के लिए दिया है कि तुम जितने गहराई में 'मानस' में जाओ डूबो, डूबो, डूबो। धन्य हो जाओगे।

'हुं आव्यो छुं अहीं डूबवा, तरवा नथी आव्यो।'

ऐसा गुजराती में एक शे'र है।

स्थानिक लोग ध्यान रखे। स्थानिक लोगों को तो कायम रहना है। यहां गंदगी मंदाकिनी में न जाए। उपर जहां से मंदाकिनी निकलती है, पीछे जहां जाती हो यह बात ओर लेकिन चित्रकूट का एरिया निश्चित करना है तो इतनी मंदाकिनी, मंदाकिनी ही रहनी चाहिए। और वो कोई बड़ा प्रोजेक्ट करने की जरूरत भी नहीं है साहब! दो सरकार मिलकर कर सकती है। मुझे कल अच्छा लगा, एक भाई ने चिठ्ठी लिखी कि बापू, आपने कहा, आपका मेसेज उन तक पहुंचा है। मैं बोला हूं, उन तक जाएगा ही। कर सके न कर सके वो उनके भाग्य की बात है लेकिन बात तो जाएगी न! कई युवक लोग कल मिले, बापू, हम मंदाकिनी के प्रवाह की शुद्धि के लिए यह कर रहे हैं। मैंने कहा, मैं तो हर जगह यह बोलता ही हूं। सबका यह दायित्व है।

यह चित्रकूट है। गोस्वामीजी की चित्रकूट प्रीति गज़ब है! तुलसीदासजी राजापुर में कितना रहे, मुझे खबर नहीं! और राजापुर के बारे में सबके अपने-अपने मत हो सकते हैं! लेकिन चित्रकूट के बारे में किसी का मतभेद नहीं है। तुलसी और चित्रकूट पर्याय है, संयोग है। तुलसी है तो चित्रकूट है। चित्रकूट है तो तुलसी है। दोनों पर्याय है। ओर स्थानों के लिए विवाद हो सकता है, छोड़ो! लेकिन तुलसी का यह स्थान; यहां तुलसी बहुत रहे। तुलसी तो काशी में रहे, पंडितों की नगरी में रहे। फिर वहां भी जब परेशान हो जाते तो दौड़कर आते हैं। तुलसी कहते हैं, यह संसार भुजंग बन कर मुझे बार-बार डंसता है। संसार भुजंग बनकर नहीं, काशी का विवाद बनकर डंसता था! शास्त्रों को जिन्होंने शस्त्र बना दिए थे! तुलसी को परेशान करते थे। तुलसी कहते हैं, यह सांसारिक बातें मुझे दंश देती है। मेरा ज्ञान उतरने लगता है, विष चढ़ने लगता है, तब मैं दौड़कर चित्रकूट चला जाता हूं! अपने मन को बार-बार कहते हैं, हे मन, चलो, चित्रकूट चलो, चित्रकूट चलो।

वृंदावन में रास है, कामदवन में रस है; अखंड रस है। उस समय वन रहा इस समय वृंदावन वन के रूप में नहीं है। ठीक है देशकाल के अनुसार। चित्रकूट अभी बचा है। एक विस्तार निश्चित करके उसको बचाया जाए। यद्यपि नगर की कोई आलोचना नहीं है। नगर भी महिमावंत है। नगर मैं कौशल्य होता है; बुद्धिचातुर्य प्रकट होता है; नई-नई सड़कें निकलती है; सब गंदें नालें इधर-उधर कर दिए जाते हैं। सब सुविधाएं होती है अवश्य लेकिन नगर और वन में जो फ़र्क है वो तो है ही। वृंदावन प्रेमभूमि है, स्नेहभूमि है; कामदवन, चित्रकूट भी स्नेहभूमि है। 'तुलसी सुभग सनेह वन...' वहां के रास से गोपीजनों को सौभग मद आया तो भगवान अंतर्धान हो गये। यहां के राम अंतर्धान नहीं हुए। क्योंकि यहां किसी को मद आया ही नहीं। मैं बार-बार कहता हूं, कलिप्रभाव है। बाकी इतने साल पहले जब मैं चित्रकूट आया; यहां के संतों में, यहां के भजनानंदियों में आपको अमुक प्रकार की जड़ता और अहंकार की मात्रा नहीं दिखती। यह तुलसी ने चित्रकूट को क्या-क्या कहा? कभी चित्त कहा, कभी औषधि कहा, कभी कुछ कहा, कभी कुछ कहा।

तो जिज्ञासा है कि अंतःकरण की प्रवृत्ति में भरत के नाम का उच्चारण करने से कोई अनुभूति होती है? आप सब मेरे हैं तो कहूं, मैं जब से रामकथा मेरे दादाजी से पढ़ता था तब से मैं भरतनाम का यह दोहा दिन में तीन बार जपता हूं। सालें बीत गई।

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार।

भरत का नाम उच्चारण करने की जरूरत नहीं। भरत का यह जो दोहा तुलसीदासजी ने लिखा है यह लिख लो। यह पढ़ो। मेरे क्रम में यह है। मेरे मन में किसी के प्रति शत्रुता न पैदा हो इसलिए मैं शत्रुघ्न की चौपाई रोज तीन बार बोलता हूं। और इससे मुझे फायदा हुआ कि किसी के प्रति द्वेष न पैदा हो, शत्रुता न पैदा हो। यह अहंकार नहीं कर सकते क्योंकि हम आदमी है, जीव है, कभी भी गिर सकते हैं। लेकिन फायदा होता है। 'जाके सुमिरन ते...' हम भी दूसरों को अपनी औकात के अनुसार कुछ मदद कर सके इसलिए मैं लक्ष्मण नाम का स्मरण किया करता हूं रोज मेरी त्रिकाल पूजा में। भरत के इस दोहे का आप प्रयोग कर सकते हैं, फायदा होगा; आनंद आएगा। मैंने एक बार गुरुकुल में भी भरतचरित्र पर एक कथा की है, तब इस बात पर मेरा लक्ष्य रहा था 'मिटिहहिं पाप प्रपंच सब ...' सभी रजोगुणी प्रवृत्तियां कम हो सकती है भरत के नाम से। 'पाप' और 'पुण्य' दो शब्दों में मेरी ज्यादा रुचि नहीं रहती है। इसलिए मैं इसका अर्थ करता हूं, हम जो प्रपंच करते हैं वो ही पाप है। जो हम खेल करते हैं, नेटवर्क बनाते हैं, होशियारी करते हैं, चतुराई करते हैं, दूसरे को शीशे में उतारने का प्रयास करते हैं तो यही पाप है, और क्या? जीवन में कुछ कषाय, कुछ दूरित जो हमारे लिए अच्छे नहीं है, उसका भार उतर जाता है। आदमी हर स्थिति में निर्भार रहता है। आप अनुभव करके देखो। भरत के सुमिरन से लोक में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ती जाएगी; यश बढ़ता जाएगा; कीर्ति बढ़ती जाएगी। परलोक क्या है, कहां है, अल्लाह जाने! परलोक का मेरा अर्थ है कि जिसको आप पहचानते नहीं है ऐसे लोगों को सुख देना और वो सुखी हो उसका सुख खुद लेना, यह मेरा परलोक है। जैसे मैं झोंपडे में जाकर भिक्षा लेता हूं। उनको मेरे से कोई संबंध नहीं कि मोरारिबापू कौन है? लेकिन वहां जाकर मैं जो भिक्षा पाऊं उनको जो सुख मिलता है। अपने को क्या सुख? 'रामायण' मिल गया है, सुख ही सुख है। तो भरत नाम से साधना की गतिशीलता बन सकती है यह मैं जरूर कह सकता हूं।

'बापू, आपके जीवन में सिर्फ़ कथा ही है या व्यथा भी है?' आपको मेरी व्यथा में इतनी रुचि क्यों है? कथा में रुचि रखना। दुनिया में कोई भी आदमी हो उसको कुछ न कुछ तकलीफ़ें होती ही है। तकलीफ़ न हो तो भजन का आनंद नहीं आएगा। भजन व्यथा निवारते हैं तभी तो भजन की कसौटी है। बाकी तो शरीर है। शरीरधर्मी को कुछ न कुछ होता है। कभी सरदर्द हो गया, कभी कुछ हो गया। कभी निकटवाले झूठ बोले, चालाकी करे। थोड़ा वो होता है। लेकिन उसको ज्यादा टिकने न दे भजन। संसार दुःखालयम् है। महात्मालोग होते हैं। मस्ती में घूमते हैं। बाकी संसार में है उसको कोई न कोई तकलीफ़ होगी। क्यों न हो? होनी चाहिए। हम जैसों का तप तो वो ही है ना! बाकी हम क्या तप कर सकते हैं? व्यथा आए, भगवान के

आश्रय में जीते रहो। व्यथा टलती जाएगी कथा के द्वारा। बाकी तो आठों पहर आनंद साहब!

'बापू, कल आपने चित्रकूटी प्रेम की चर्चा की। यह प्रेम चित्रकूट में ही मिलेगा या चित्रकूट के बाहर भी?' भरतचरित्र से प्रेम मिलेगा, अवश्य। भरत नाम की व्याख्या जो मैंने दूसरे दिन की। ऐसा स्वभाव जहां भी मिले वहां भरतपना देखना और ऐसे किसी भी बुद्धपुरुष के संग में कुछ लम्हें बिताना, प्रेम मिलना शुरू हो जाएगा। साधु से कभी पैसा नहीं मिलता, प्रेम ही मिलता है। पैसा कभी मिलता ही नहीं साधु से।

'बापू, आपके मन को किस प्रकार के श्रोता अधिक भाते हैं?' सब। 'सब मम प्रिय...' तुलसी की चौपाई। यह चौपाई मैं तो नहीं बोल सकता, राम बोल सकते हैं। लेकिन मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन किया है, आप जानते हैं। तुलसी की चौपाई पहले समझ लीजिए।

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।

भगवान कहते हैं, यह दुनिया में सब मेरे प्रिय हैं क्योंकि सब मेरे उत्पन्न किए हैं, मैंने बनाए हैं। लेकिन सबमें मुझे मनुष्य अत्यंत प्रिय है। ऐसा भगवान राम का एक वचन है। तो इस पंक्ति को तो मैं ऐसे कह देता हूं, 'सब मम प्रिय सब मम अपनाए।' मैं सबको अपना लेता हूं। कैसा भी श्रोता, सबको अपनाकर बैठा हूं। स्वीकार कर लेता हूं। लेकिन इतना जरूर कि श्रोताओं में भी 'सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।' श्रोता के साथ-साथ मानवपना भी जिसमें हो कि कथा में आकर किसी की जगह दबा न दे! किसी से लड़े ना! यह न करे, वो न करे! मनुष्य हो, बस!

'बापू, आपका शिष्य बनने के लिए क्या करना होगा?' मेरा कोई शिष्य है नहीं, मैं किसी का गुरु हूं नहीं, बस! साफ़-साफ़ बात है। मेरे हजारों श्रोता है, शिष्य कोई नहीं। न मैं किसी का गुरु हूं, न मेरा कोई शिष्य। मैं केवल मेरे एकमात्र सद्गुरु भगवान का आश्रित हूं। और उसको निर्वाह कर लूं, पर्याप्त है। 'बापू, आप सूर्यवंशी है कि चंद्रवंशी?' मैं कथावंशी हूं। मेरा वंश कैलासवंश है, जहां से कथा शुरू हुई है।

तो बाप! श्री हनुमानजी की यात्रा किष्किन्धा से त्रिकूट की यात्रा। श्री भरत की यात्रा श्री अयोध्या से चित्रकूट की यात्रा। हनुमानजी की यात्रा में चार विघ्न आए। जो 'सुन्दरकांड' का पाठ करते हैं, आपको पता है, आप जानते हैं। एक-दो दिन पहले एक अखबार में मैंने एक खबर पढ़ी, एक छोटी-सी खबर थी कि एक मरीज़ अपनी याददास्त गंवा बैठा था। उसके पास 'सुन्दरकांड' का पाठ धीरे-धीरे कुछ बार दोहराया गया और डोक्टर हैरान है! उसकी याददास्त लौट आई! मैं अकारण रामकथा की महिमा को बढ़ाचढ़ाकर नहीं गा रहा हूं। 'मानस' के हर सोपान, 'मानस' की हर पंक्तियां भरोसा करिएगा मेरे भाई-बहन, महामंत्र है।

'सुन्दरकांड' में आप पढ़ते हैं कि हनुमानजी की त्रिकूट की यात्रा है, लंका की यात्रा है, सीता को खोजने की यात्रा है। यहां भरत की यात्रा चित्रकूट की है। हनुमानजी की यात्रा भक्ति की खोज है, भरत की यात्रा भगवान की खोज है। वहां सीता को प्राप्त करना है कि सीता कहां है? यहां राम को प्राप्त करना है कि राम कहां है? राम को खोजने के लिए भरत निकले। भक्ति की यात्रा के चार विघ्न आप जानते हैं। उसमें हम न जाए, हम भरत पर केन्द्रित रहे। हमें केन्द्रित होना है भरतयात्रा पर। श्री भरतजी अयोध्या से यात्रा आरंभ करते हैं चित्रकूट की उसमें मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से पांच विघ्न। इन पांचों विघ्नों में श्री भरतजी का विघ्नदर्शन है। हम धर्मदर्शन की बात कर रहे थे कि श्री भरतजी का धर्मदर्शन क्या है? पहला अर्थदर्शन। अर्थ के यहां दो अर्थ है मेरे भाई-बहन, अर्थ मानी पैसा, राज्य, रजोगुण, वैभव यह अर्थ में समाहित है। अर्थ का दूसरा अर्थ, जीवन का अर्थ। हम अर्थ पुरुषार्थ की बात करते हैं तो केवल रुपिए-पैसे में ही देखते हैं! अर्थ को केवल इतने में ही न देखा जाय। सबसे बड़ा अर्थ है किसी बुद्धपुरुष द्वारा हमें जीवन का अर्थ प्राप्त हो जाए। एक सार्थक अर्थ प्राप्त हो जाए। तो भरतजी की यात्रा में यह कैसे सार्थकता प्राप्त करते गए भरतजी उसकी दृष्टि प्राप्त होती है।

यात्रा का आरंभ होता है और पहला विघ्न आता है। भरतजी ने निर्णय किया कि राम-लक्ष्मण-जानकी यदि तीनों वन में नंगे पैर घूमते हैं तो मैं रथ में कैसे बैठ सकता हूं? भरतजी ने रथ छोड़ दिया और पैदल चलने लगे। भरतजी को चलते देखकर अयोध्या के लोगों ने भी सब वाहनों का त्याग कर दिया कि भरत बिना पदत्राण चले तो हम नहीं बैठ सकते। सबने वाहन का त्याग किया। माँ कौशल्या को पता लग गया कि भरत पैदल चल रहा है इसलिए पूरी जनता पैदल चल रही है! माँ की पालखी निकट आई। पालखी के परदे को उठाकर माँ ने भरत के

सिर पर हाथ रखते हुए कहा, 'भरत, तेरे मन में अच्छा नहीं लगता है कि राम पैदल गए तो मैं रथ में कैसे बैठूं, लेकिन लोगों के लिए तू रथ में बैठ।' श्री भरतजी निर्णय लेकर निकले थे कि मुझे वाहन में नहीं बैठना, लेकिन माँ के आग्रह पर वो रथारूढ होते हैं। मेरी समझ में चित्रकूट की यात्रा का यह पहला विघ्न है कि भरत को अपना निर्णय बदलना पड़ा।

मेरे भाई-बहन, भगवद्प्राप्ति की यात्रा का पहला विघ्न है नियम भंग। कोई नियम लेकर निकले तो उसमें भंग पड़ने की बहुत संभावना है और वो तब होती है जब लोगों को पता लग जाए। मुझे इतना ही कहकर आगे बढ़ना है, कोई भी नियम लो तो जितना हो सके गुप्त रखा जाए। नियम जाहिर होता है तो बाधा आती है। प्रभु की यात्रा में कभी-कभी साधक को नियम भंग की नौबत आती है। लेकिन भरत का यह नियम छोड़ देना मेरी दृष्टि में अच्छा निकला कि पूरे समाज को कष्ट हो इससे अच्छा है भरत ने प्रेक्टिकल होकर यह कर लिया। दूसरा विघ्न; जब शृंगबेरपुर पूरी जनता पहुंची तो महाराज गुह, निषाद गैरसमझ करता है कि कैकेयी का बेटा इतनी बड़ी सेना लेकर निकला है; निश्चित रूप में वो भगवान राम पर हमला करने के निकला है कि चौदह साल के बाद कोई राज्य की मांग न करे। और सबने भरत को मार देने तक शपथ की तैयारियां कर ली। भरत के प्रति गैरसमझ पैदा हो गई। मैं इतना ही सूत्रात्मक कहूंगा कि जब साधक की चित्रकूट यात्रा शुरू होती है तो दूसरा विघ्न आता है बीच में आनेवाला समाज हमारे लिए गैरसमझ पैदा करे। यह काहे का भगत है? यह तो राम का विरोध करने जा रहा है! जो भी ऐसी आध्यात्मिक यात्रा में, प्रेम की यात्रा में निकले हैं इन सभी साधकों को ऐसा सामना करना ही पड़ता है। लेकिन भरत के प्रेम और भरत की अंत:करण की स्थिति का बोध जब गुहराज को प्राप्त होता है तब गैरसमझ करनेवाले सब भरतजी को एकदम प्रिय समझकर उनकी सेवा में लग जाते हैं। गैरसमझ होगी लेकिन तुम्हारा सत्य होगा, तुम्हारा लक्ष्य चित्रकूट होगा तो गैरसमझ करनेवाले थोड़े समय में सत्य जानकर तुम्हें महोब्बत करने लगेंगे। तुम्हारे पास शरणागत हो जाएंगे।

भरद्वाज ऋषि के आश्रम में सब पहुंचते हैं। वहां एक तीसरा विघ्न आया। और वो विघ्न था भरद्वाजजी ने सोचा कि जैसा देवता हो वैसी पूजा होनी चाहिए। हमारे यहां आज भरत जैसा अतिथि आया। हम तो अकिंचन महात्मागण, उसकी क्या सेवा करें? लेकिन सोचते ही रिद्धि-सिद्धियां आ जाती है और भरत के आतिथ्य के लिए जो वैभव खड़ा किया गया! सब प्रकार के भोग की सामग्री उपलब्ध कर दी गई यह भरत की तीसरी कसौटी थी। अयोध्या की पूरी जनता किसी न किसी सुख में प्रवेश कर जाती है। भरद्वाज आदि संतगण भरत की कसौटी में दोनों को मिलाने की चेष्टा में है लेकिन भरतरूपी चकवे ने संपत्ति पर, भोगों पर दृष्टि नहीं डाली और भोग और संपदारूपी चकवी भरत को प्रभावित न कर सकी। साधना में कभी-कभी संत लोग भी हमारी परीक्षा करेंगे कि देखे तो सही साधक कितना पका है? साधुओं के द्वारा भी कसौटी हो सकती है। होनी चाहिए। यह तीसरा विघ्न है बाप! फिर भरतजी की यात्रा धीरे-धीरे आगे जाती है। और यह प्रेमयात्रा में भरत की दशा को देखकर देवराज इन्द्र और उसके सहयोगी सब देवगण भरत की यात्रा में विघ्न डालने का षड्यंत्र रचते हैं कि भरत और राम की भेंट ही न हो! पहला विघ्न नियम भंग। दूसरा विघ्न समाज द्वारा गैरसमझ। तीसरा विघ्न महात्माओं के द्वारा, रिद्धि-सिद्धियों के द्वारा भोग पैदा करके उसमें साधक कितना असंग रह सकता है यह कसौटी। भरत तीनों में से पार हो गए और चौथी घटना घटी देवताओं की साज़िश कि दोनों की भेंट न हो। यह चौथा विघ्न है कि चित्रकूट की यात्रा में सूरीतत्त्व विघ्न डाले कि यह आदमी कामदगिरि न पहुंचे! यानी राम-भरत मिलन न हो। प्रभु का साक्षात्कार न हो। यह दैवीतत्त्व भी विघ्न डालते हैं। भरतजी उसमें मौनव्रत से पार ऊतर गए। लेकिन मैं हरवक्त कहता हूं कि जो पांचवां विघ्न आता है यह है बिलकुल निकटवाली व्यक्ति, पारिवारिक व्यक्ति हमारा विरोध करे। और यह विरोध सामान्य न हो। मार देने तक की साज़िश बने कि इसकी हत्या हो जाए!

भरत जब चित्रकूट के निकट आते हैं। सुबह का समय है। साधु-संत सब आ गए हैं। राम-लक्ष्मण-जानकी सब बैठे हैं। चर्चा चल रही है। आकाश में धूल उड़ रही है। पशु-पक्षी के वृंद के वृंद भयभीत होकर भगवान के आश्रम में आश्रित होने लगे। भगवान खड़े हो गये कि यह क्या हो रहा है? इतने में कौल-किरातों ने आकर भगवान को समाचार दिया कि प्रभु, बहुत बड़ी संख्या में अयोध्या से दो राजकुमार आ रहे हैं उसके कारण धूल उड़ रही है! पशु-पक्षी भागे जा रहे हैं! सुना है, भरतजी आ रहे हैं। और मंगलमय बचन सुनकर परमात्मा का मन आनंद से भर गया, शरीर पुलकित हो गया। तुलसी कहते हैं, परमात्मा के कमल नयन में स्नेह के जल आ गए हैं। दूसरी ही पल भगवान चिंतित हुए हैं कि भरत क्यों आ रहा है? उसके मन में क्या होगा? भगवान के मन में कोई शंका नहीं कि मुझसे लडने आ रहा है, लेकिन भगवान की चिंता यह कि भरत आ रहा है तो फिर पिता की आज्ञा मैं निभा सकूंगा, नहीं निभा सकूंगा? वो मुझे कहेगा, आपको अवध आना ही पड़ेगा; तो भक्ताधीन होने के कारण कुछ नहीं कर पाऊंगा! और परमात्मा बैठे थे, खड़े हो गए! भगवान के चेहरे पर चिंता आई उसी समय लक्ष्मणजी से नहीं रहा गया और खड़े हो गए! और भगवान राम से कहने लगे कि भगवन्, मैं जानता हूं आप नहीं बोलेंगे। लेकिन यह भरत आ रहा है। यह भरत ने हम पर कम नहीं किया है, बहुत हो गई! मुझे तो लगता है महाराज, भरत इसीलिए आ रहा है कि उसको राजमद आ गया है! राजमद आने के बाद किसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हुई? भरत अच्छा था लेकिन राजमद ने उसकी बुद्धि को दूषित कर दिया। महाराज, मुझे माफ़ करिएगा, कैकेई के गर्भ से पैदा हुआ, इसमें सद्भाव नहीं हो सकता। और एकदम बोलने लगे कि दोनों भाईयों को मैं मृत्यु की शरण कर दूंगा!

भगवान की स्थिति बड़ी असमंजस हुई। लक्ष्मण बोल रहे हैं। उसका समर्पण भगवान जानते हैं इसलिए कुछ कह नहीं पा रहे हैं। और भरत को मार देने की बात भगवान सह नहीं पा रहे हैं। लेकिन राम तो राम है। लक्ष्मण को शांत करते हुए कहा, लक्ष्मण, मैं तेरी बातों से सहमत हूं। तूने बहुत अच्छा निवेदन किया कि दुनिया में राजमद बहुत खराब है, सत्ता का मद बहुत खराब है। मैं शतप्रतिशत इस बात में सहमत हूं, लेकिन एक बात कहूं भैया, अयोध्या का पद नहीं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पदवी भरत को मिल जाए तो भी हमारे भरत को कभी मद नहीं आ सकता। भरत अपवाद है। लक्ष्मण के रोष को शांत कर दिया, सत्य समझा दिया और लक्ष्मण चुप हुए। मेरी व्यासपीठ को लगा कि भगवद्प्राप्ति की यह पांचवीं बाधा है कि परिवार की निकट की व्यक्ति तुम्हें मार दे, इतने निर्णय पर आ जाए। और बिलकुल निकटवाला जब विरोध शुरू करे तब समझना चित्रकूट दूर नहीं है, अब हरि दूर नहीं है। लेकिन उसी समय ठीक रहना बहुत मुश्किल है। मीरां बिलकुल निकट आई तो परिवार के ही एक सदस्य ने ज़हर भेजा! जिसस क्राईस्ट बिलकुल पाने को तैयार थे तभी वधस्तंभ आया! नरसिंह मेहता का अपने भाई ने विरोध किया! ब्रजवनिताओं का विरोध उनके घरवालों ने किया। भगवद्यात्रा, चित्रकूट की यात्रा में जब निकट की व्यक्ति मृत्यु की साज़िश रचे कि मैं उसको मार दूं तब समझना, अब चित्रकूट दूर नहीं है। तो भरतजी अपनी यात्रा में इसी तरह आगे बढ़ते हैं, प्रभुप्राप्ति तक पहुंच जाते हैं और सही में चित्रकूट में रामराज्य की स्थापना हो जाती है।

अयोध्या में तो रामराज्य होते-होते बात खतम हो गई। कैकेयी ने वरदान मांगे। रामराज्य तो नहीं हुआ। राम को राज्य में रहने भी नहीं दिया! कभी-कभी पाटनगर में रामराज्य नहीं होता साहब! वो तो दूसरी जगह ही हो जाता है। तो सच्चा रामराज्य तो 'रामचरित मानस' के आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्रकूट में स्थापित हुआ। यह वन भी एक राज्य है। चित्रकूट भी एक साम्राज्य है तुलसी की दृष्टि में। भगवान राम ने ही कह दिया था कौशल्याजी को कि मुझे राज्य मिला है। पिता ने मुझे राज्य दे दिया है। लेकिन फ़र्क इतना कि मुझे जंगल का राज दिया है। तुलसीदासजी ने बड़ी प्यारी भाषा में चित्रकूट का राजा कौन है इसका जिक्र किया है। 'सचिव बिराग बिवेक नरेसु...' ऐसा कहकर विवेक के राज्य का जो रूपक बनाकर चित्रकूट की बात कही है। ऐसे चित्रकूटधाम में रामकथा भरत पर केन्द्रित हुई है। आगे की कुछ चर्चा हम कल करेंगे।

> वृंदावन में रास है, यहां चित्रकूट में रस है। लेकिन माफ़ करिएगा, वृंदावन का रूप वन का नहीं रहा, नगर का हो चुका है। और हम भाग्यवान है कि चित्रकूट का रूप अभी भी कामदवन के रूप में अक्षुण्ण है। वहां तो बिल्डिंगें है। यहां भी बिल्डिंग बने, मैं मना नहीं करता। लेकिन मूल में जो स्वाभाविक चित्रकूट है वो रहना चाहिए। मेरे भाई-बहन, आप मंदाकिनी में स्नान करो तो साबून से न नहाओ। बिलग-बिलग केमिकल से तुम्हारे बाल धोने का नहीं, मंदाकिनी तो तुम्हारे विकृत विचारों को धोने के लिए है।

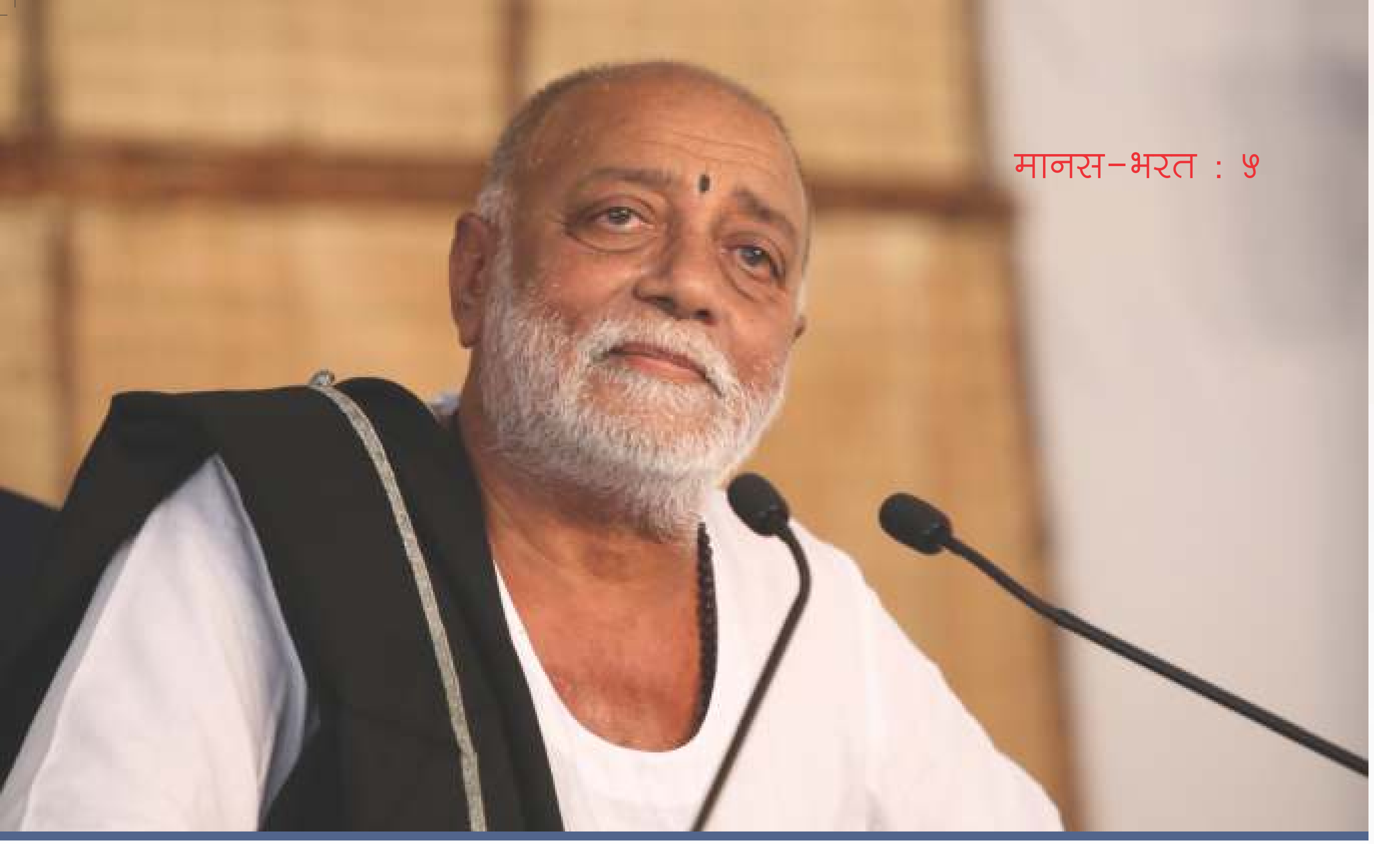

चित्रकूट 'रामचरित मानस' की राजधानी है

'मानस-भरत', जिसको केन्द्र में रखते हुए हम संवाद कर रहे हैं। बहुत-सी जिज्ञासाएं प्रसंग के अनुकूल और कुछ अनुकूल न भी हो ऐसी भी है। लेकिन जो सत्संग के अनुकूल है उसी को मैं लेकर आगे बढ़ूं। कल हमने देखा कि चित्रकूट के निकट पहुंचते हुए भरत को निषादराज गुह एक ऊंचे टीले पर चढ़कर, भुजा उठाकर के संकेत करता है कि भरतजी, आईए, चित्रकूट का दर्शन हो रहा है। कल पांच बातें देखी। खास करके पहले तो मेरे लिए मैं खुद को ही आपके साथ जोड़कर के बातें करता हूं कि हमारे जीवन में मार्गदर्शक कौन हो सकता है? यहां निषादराज गुह भरतजी का मार्गदर्शक बनकर चल रहा है। गुह जब मार्गदर्शक है तब बहुत-सी चीजें सोचनी चाहिए। जीवन के परमलक्ष्य को प्राप्त कराने में मार्गदर्शक का कुल और मूल नहीं देखा जाता। यह कोई भी हो सकता है। एक पपीहे की आवाज़ भी आदमी की कुंडलिनी को जागृत कर सकती है। एक व्यापारी की दुकान में नानकदेव नौकरी कर रहे थे और जो कुछ मालसामान आता था उसकी गिनती उसको करनी थी। एक, दो, तीन, चार, पांच, छ, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह और तेरह शब्द आते ही गुरु नानकदेव की जागृति हो गई। तो वहां एक गणित की गिनती मार्गदर्शक हो गई।

बौद्ध भिखुओं की कथा में आता है कि एक बौद्ध भिखु कुए में देख रहा था। पूर्णिमा का चांद प्रतिबिंब हो रहा था कुए में और इस प्रतिबिंब को देखकर बुद्ध का एक शिष्य बुद्धत्व को प्राप्त कर लेता है। वहां चांद का प्रतिबिंब मार्गदर्शक बन गया। कोई सूत्र, कोई मंत्र, कोई शास्त्र, कोई बालक, कोई भी जो हमें परम की राह दिखाए। उसके मूल को और कुल को न देखो। वर्ना तो केवट, निषाद उस समय में तो बिलकुल उपेक्षित अस्पृश्य, ऐसे यह कोल-किरात जो भगवान राम के साथ चले, भरतजी के संग चले। जीवन में कुछ नहीं जाननेवाले यह लोग इनमें से गुह। एक ओर भरद्वाजजी के चार शिष्य जो वेदों के प्रतीक है, भगवान राम का मार्गदर्शक बनते हैं और लोक-वेद से बिलकुल हीन यह केवट, निषाद संत भरत का मार्गदर्शक बन सकता है। तो एक तो उसका कुल-मूल न देखा जाए।

दूसरा, कभी-कभी आदमी ऊंचे चढ़ता है तो खुद को दिखाने के लिए उपर चढ़ता है कि लोगों की दृष्टि मेरे प्रति आकृष्ट हो जाए कि मैं इतना ऊंचा हो गया हूं। बाप! सोचिए, गुह ऊंचाई पर चढ़ा खुद को दिखाने के लिए नहीं। राम को दिखाने के लिए कि देखो। और भरत को दिखाया। जीवन में कभी भी ऊंचाई आए तो कभी-कभी खुद को देखने के लिए अथवा तो खुद को दिखाने के लिए उसका उपयोग न हो। खुदा को दिखाने के लिए हो कि भरतजी, वो देखिए पांच वृक्ष। 'पाकरि जंबु रसाल तमाला।' 'जिन्ह तरुबरन्ह तरुन्ह मध्य बटु सोहा।' इस चारों के बीच में एक सघन-सपल्लव एक वटवृक्ष है। इनके नीचे देखो भरतजी, मैं देख रहा हूं। आप देखिए। वो दिखाई दे रहे हैं। बेदिका है जहां जानकीजी ने अपने कर सरोज से लिंपन किया है। जहां मुनि मंडलियों के साथ रामजी निरंतर बैठे हैं। 'नित सिय राम सुजान।' आगम-निगम पुरान की कथा सुनते हैं।

मेरे पास कल सायंकाल को एक साधु आये। शायद कथा में भी रहे होंगे। एक युवान साधु। शायद उसका मौन था। लेकिन मेरे से वो बोल रहे थे। बहुत धीरे से बोल रहे थे। मैं समझ नहीं पाया तो मैंने कहा, आप जरा ठीक से बताएं तो लिखकर मुझे बताते हैं कि बापू, कितने अनुष्ठान मैं कर चुका हूं। चित्रकूट में वटवृक्ष के नीचे वेदिका पर राम-लखन-जानकी जो बिराजमान होते हैं और मुनि समाज में जो सोह रहे हैं, उस दृश्य की झांकी करने के लिए मैं अनुष्ठान कर रहा हूं। अभी तक कुछ हुआ नहीं है। उसका भाव कि मुझे यह झांकी हो। साधु। ऐसा भाव साधु ही रख सकता है। इसलिए मैं साधु कहूं। और साधु है भी। मैंने पहले भी इस युवक साधु को देखा है। भजन का सच्चा अर्थ क्या है महात्मागण? आप भजन किसको कहते हैं? सबसे श्रेष्ठ भजन है निष्काम भजन जिसमें हरिदर्शन की कामना भी न हो। तुझे आना हो तो आ, न आना हो तो रह वैकुंठ में। मुझे तेरे सुमिरन में आंसू आए, मुझे तेरे सुमिरन में आनंद आए वो ही मेरा परमात्मा है। इसका मतलब यह नहीं कि यह चाह न करे।

साधु की चाह अच्छी है लेकिन चाहने के बाद वो हरिदर्शन नहीं हुआ तो फिर डिप्रेशन आ सकता है। और सांसारिक पदार्थों का न प्राप्त होना और आदमी डिप्रेश हो जाए तो उसका इलाज भी हो सकता है। आध्यात्मिक मार्ग में आये डिप्रेशन का इलाज बड़ा मुश्किल है। कोई परमबुद्ध मिल जाए तो ही संभव है। 'सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।' यह भाव बहुत बड़ा रहा। ये महात्मा के इस भाव को मैं प्रणाम करता हूं। हमारी ऐसी जिद्द क्यों कि हमें कोई विशिष्ट रूप में ही हरि दिखे। हां, 'मानस' में इसको भी अवकाश है। इस भाव को भी 'मानस' ने रखा है कि जब कोई भगवान का दर्शन करना चाहता है तो अपेक्षा रखता है कि मुझे इस रूप में दर्शन मिले। 'जो सरूप बस सिव मन माही।' जो स्वरूप शंकर के हृदय में विराजमान है उस रूप का मुझे दर्शन हो। जैसे तुलसीदासजी कहते हैं, 'राम लखन सीता सहित हृदय बसहुं सुरभूप।' यह भाव अच्छा है। बाप! मैं तो अपने ढंग से जो सोचता हूं, यह मेरा व्यक्तिगत विचार हो सकता है। आप उसमें भला-बुरा न सोचे। लेकिन अपेक्षामात्र हरिमिलन में रुकावट है। इस भाव का मैं अनादर नहीं कर सकता। मैं साधु को कहना चाहूंगा कि मुझे उस चित्रकूट की झांकी नहीं हो रही है, इस पीड़ा के कारण आपकी आंख में कभी आंसू आ जाए तो आंसू मत समझो। वो हरि आया है। हम अपनी फ्रेम में ईश्वर को क्यों मढ़ लेते हैं! और जो आपको कहते हैं, हमको परमात्मा के इस रूप में दर्शन हुए हैं। सब इमानदार नहीं होते हैं, माफ़ करिएगा। कौन खरा करने जाएगा? सबकी प्राप्ति, सबका साक्षात्कार बिलग होता है। हरि चाहे तो हो जाता है।

अध्यात्ममार्ग में डिप्रेशन न आए इसलिए बहुत सोचना। बहुत जरूरी है। भरत का प्रकरण चल रहा है। भरतजी परमात्मा पर छोड़ देते हैं-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई ।
करुना सागर कीजिअ सोई ।।

तू जिसमें प्रसन्न हो वो ही करना। मुझे दर्शन देने में तेरी प्रसन्नता न है, कभी दर्शन मत देना। मुझे दर्शन देने में तेरा कोई शेष अर्थ है, तू रख। साधु की पीड़ा मैं समझता हूं। मेरे पास आकर उसने जिज्ञासा की इसलिए मेरे अनुभव के अनुसार उसे जवाब देता हूं। मैं यह नहीं कहूं कि मैं सही हूं। मुझे सोचना है मेरे बारे में तो मैं सही हूं। तुम्हारे लिए मैं सही न भी हो सकता हूं। मैं मेरी बात कहता हूं, लेकिन यह पीड़ा को मैंने महसूस जरूर किया रात को कि एक साधु कितना पीड़ित है? प्रभु को करुणा करनी चाहिए। मैं तो यह कहूं। करनी चाहिए। मैं और क्या कह सकता हूं? लेकिन छोड़ दो हरि पर यार! जो कामनाएं तुम्हारी मुस्कुराहट छिन ले, जो कामनाएं तुम्हें डिप्रेश कर दे, मुझे नहीं लगता यह भक्ति का सही मार्ग है। भक्ति तो तुम्हें नाचना सिखा दे। भक्ति तो नर्तन करा दे। भक्ति तो प्रसन्नता से भर दे। संत की, साधु की यह ग्लानि मैं समझ रहा हूं। यह पीड़ा परमात्मा करे सबको मिले। लेकिन जो चाहते हैं

वो नहीं मिलेगा तो आप जरा दुःखी होओगे। मस्त रहो प्यारो! अध्यात्म में डिप्रेशन आने के बाद दवा मुश्किल है। कोई बुद्धपुरुष मिले। बुद्धपुरुष होते हैं। खोजना मुश्किल है। इसीलिए 'भजन करे निहकाम।' अपेक्षा मुक्त भजन।

मैंने कल आपको मीरां की बात बताई थी कि मीरां को साधुओं ने पूछा, कृष्ण आया? बैठी थी एकतारा लेकर। मीरां ने जवाब दिया, आनंद आया। कृष्ण आए न आए मारो गोली! आनंद आना चाहिए। और कृष्ण आ भी जाए और तुमको आनंद न आए तो कृष्ण कौन काम का? यह रोज आपको मनभावन हवा आपके बदन को छुए तो परमात्मा नहीं आया? यह हवा हवा है, क्या हरि का हाथ नहीं है, जो तुम्हें छू कर चला गया? 'हे हरि, हे गोविंद' अपने गुरु को याद करके आंख में आंसू आए तो परमात्मा नहीं आया? किस परमात्मा के चाहक हो आप? एक मृगशावक तुम्हारे सामने कुदकर निर्दोष आंखों से तुम्हारे सामने देखकर छलांग लगाकर चला जाए और तुम्हारा रोमरोम पुलकित हो जाए तो हरि नहीं आया? जानकीजी 'मानस' की पुष्पवाटिका में किस-किस में परमात्मा को देखती है?

'मानस' का तो यह प्रदेश है। चित्रकूट 'रामचरित मानस' की तो राजधानी है। यहां 'रामचरित मानस' का शासन है। चित्रकूट में रामकथा की महिमा जितनी हो उतनी कहां हो सकती है? काशी में है अवश्य लेकिन वहां पांडित्यसभर 'रामचरित मानस' है। आंसूसभर 'रामचरित मानस' तो केवल चित्रकूट में है। अयोध्या में है तो वो बौद्धिक 'रामचरित मानस' है। वहां बुद्धि का प्रदेश है। ध्यान देना, अयोध्या और जनकपुर दोनों बुद्धि का प्रदेश है। दंडकारण्य और पंचवटी मन का प्रदेश है। लंका अहंकार का प्रदेश है। चित्रकूट चित्त का प्रदेश है। और आनंद का संबंध मन से नहीं है। आनंद का संबंध बुद्धि से नहीं है। आनंद का संबंध अहंकार से तो कतई नहीं है। आनंद का संबंध केवल है तो केवल चित्त के साथ है। इसलिए हमारे शास्त्र कहते हैं, 'सत्चित्तआनंद।' सच्चिदानंद। आनंद का सीधा संपर्क चित्त से है।

मुझे आज यह प्रश्न भी पूछा गया, 'आनंद क्या है? इसे महसूस कैसे करें? सुख और आनंद में क्या फ़र्क है? बड़ा प्यारा प्रश्न। पहला तो आनंद का संबंध मन के साथ कभी नहीं है। हमें तो प्रत्येक शब्द के अर्थ का पता नहीं है। प्रत्येक शब्द के अर्थ की अवस्था हम में नहीं है इसलिए 'आनंद' शब्द का उपयोग हम कहीं भी कर लेते हैं! कभी-कभी कहते हैं, आज मन में आनंद बहुत आया। कभी कहते हैं, आज बुद्धि में बहुत आनंद आया। नहीं, नहीं। जिस खुशी का केन्द्र मन हो वहां आनंद कभी नहीं होता। आनंद का केन्द्र मन नहीं है। मन है हर्ष का केन्द्र। 'मन अति हरख जनाव न केहि। आज देखिहऊ परम सनेही।।' जब आपको किसी बात का हर्ष हो तब मन जुड़ा हुआ है। मन को आनंद कभी नहीं हो सकता। मन को हर्ष हो सकता है। 'हर्षित सुर संतन्ह मन चाहु ...' देवतालोग रामजनम के अवसर पर हर्षित होते हैं क्योंकि यह मनप्रधान देवता है, चित्तप्रधान देव नहीं है।

तो मेरे युवान भाई-बहन, मेरे बुजुर्ग, मेरे वडील आप सबको मेरा प्रणाम। संतों को प्रणाम। मैं आपसे मेरी बात रख रहा हूं, कहां तक सही मैं यह मैं नहीं कह सकता। यह जिम्मेवारी लेकर कह रहा हूं कि यह मेरी मान्यता है, मेरा अनुभव है। मन जब तक केन्द्र में है, आदमी को हर्ष होता है। और जिसको हर्ष होता है उसको शोक होता है। हर्ष होता है उसको विषाद भी होता है। दूसरा केन्द्र है बुद्धि। बुद्धि को भी आनंद नहीं होता। बहुत साफ़ निवेदन है मेरा आप माने या न माने। बुद्धि को कभी आनंद नहीं होता इसलिए दुनिया में बौद्धिकों को कभी आनंद नहीं होता। जो केवल बुद्धिप्रधान है, कभी आनंदित नहीं रह सकता। उसको तर्क है। अच्छे भी तर्क हो सकते हैं। स्वीकार है। अत्यंत बौद्धिक आदमी कभी आनंद नहीं ले सकता। दूसरे को हटाने की खुशी ले सकता है, मैंने उसके तर्क को काटा! लोगों ने तालियां लगा दी और उसकी खुशी होगी। आनंद? कोशों दूर! आनंद किताबी नहीं होता। किताबी हो वो आनंद नहीं। और 'रामचरित मानस' आनंद देती है तो समझ लो यह किताब नहीं है, तुलसी का कलेजा है, हृदय है। इसका नाम 'मानस' है। मानस मानी हृदय।

रचि महेस निज मानस राखा ।
पाई सुसमउ सिवा सन भाषा ।।
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।

ध्यान देना, बुद्धि की आलोचना नहीं है, लेकिन केवल खोखली बुद्धि तर्क करेगी। कोई मुझे किताब देता है, पन्ना देता है, कोई मेगझिन देता है। मैं नियमित कुछ पढ़ता नहीं। मेरा सिर दुःख जाता है! मैं किताबें नहीं पढ़ता। मेरा नित्य पढ़ना है 'रामचरित मानस' और 'श्रीमद् भगवद्गीता।' निरंतर और नित्य। यह दो ही मेरी मौन युनिवर्सिटी है। उसमें मैं पढ़ता रहता हूं। मैं स्वाध्याय करता रहता हूं। फ़िर थोड़ा अध्ययन करता हूं, फिर थोड़ा अध्ययन करा देता हूं बिना तनख्वाह, बिना कुछ लिए! मोरारिबापू मफतमां! तो बाप! कोई मुझे दे अच्छी कविता, मैं पढ़ लेता हूं। कल हमारे अग्रवालजी ने भी मुझे एक किताब दी, छोटी-बड़ी, लघु कहानियों की। तो मैं देखता हूं। नहीं देखता ऐसा नहीं। अच्छा लगता है, लेकिन नियमित मैं निरंतर नहीं पढ़ता। क्योंकि इतना समय नहीं है। पढ़ने में समय चला जाए यार! भक्ति कब करोगे? कहीं पढ़ने में उसकी स्मृति में गेप पड़ जाए तो -

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई।।

तो याद रखिए मेरे भाई-बहन, मन की प्रधानतावाले हैं हम सब। हमको किसी बात का हर्ष होता है, फिर शोक होता है, विषाद होता है। हम थोड़ी छोटी-बड़ी बुद्धि रखनेवाले लोग! हमें अपनी-अपनी बौद्धिक सफलता पर कभी सुख अनुभव होता है वो ही बुद्धि के आगे कोई बुद्धिमान आगे निकल गया तो हमारा सुख दब जाता है, दुःख महसूस होने लगता है। अहंकार में भी आनंद नहीं, अहंकार में खुशी होती है। जब साधक चित्तप्रधान होता है तब आनंद प्रकट होता है। और तुलसी चित्त किसको कहते हैं?

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित्त चारू।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारू।।

हे चित्त, तू चित्रकूट चल; चित्त, तू चित्रकूट चल। तुलसी बराबर अनुभव से बोल रहे हैं। तो मेरे भाई-बहन, आनंद अकारण होता है; सुख के कारण होते हैं; खुशी के कारण होते हैं; हर्ष के कारण होते हैं। तो उस महात्मा ने जो मुझे पूछा कि मुझे उस झांकी का दर्शन करना है इसलिए मैं अनुष्ठान पर अनुष्ठान कर रहा हूं। बाबा, हम तो और क्या कहे? हमारी कोई प्रार्थना पहुंच सकती है तो मंदाकिनी को प्रार्थना करूं कि बाबा के मन में जो पीड़ा है वो मिटे। बाकी भजन करना है, प्रेम करना है तो केवल प्रेम के लिए प्रेम हो; भजन के लिए भजन हो। और भगवान इस रूप में दर्शन दे दे और अंतर्धान हो जाए फ़िर की स्थिति का कभी सोचा है कि क्या होगा? मुश्किल हो सकता है। हां, साधक को अधिकार है कि अपने मन में वो एक रूप गढ़ता है उसी रूप में वो उसे दर्शन दे। लेकिन मेरी चिंता इतनी ही है कि हरि उसी रूप में यदि अनुभव में न आए तो फिर निराशा आएगी तो क्या होगा? अध्यात्म की निराशा की फ़िर औषधि मुश्किल है, कठिन है। फिर कोई बुद्धपुरुष चाहिए जो आपको आनंद में फिर डूबो दे।

गुह की बात जो चल रही थी कि ऊंचाई पर चढ़कर के भुजा ऊंची करके भरतजी को दिखाता है कि देखो, जहां सीतारामजी नित्य बैठकर संतों के बीच में आगम निगम पुराणों की कथा सुनते हैं, चर्चा करते हैं। ऐसी एक सुबह का कल मैं आपके सामने प्रसंग पेश कर रहा था।

सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।।

जानकीजी ने पुष्पवाटिका में नेत्रों के मार्ग से हृदय में राम की झांकी की। और मर्यादा है, सखियां संग में है इसलिए जानकी नेत्र बंद कर देती है। भीतर से राम का अनुभव करती है। फ़िर वो भाव में डूब गई तो सखी ने कहा चलो, जानकी अब देर हो रही है। फ़िर आएंगे कल हम। और फ़िर जानकी लौटती है। फ़िर राम को किस रूप में देखती है? राम पीछे है, जानकी जा रही है। 'देखन मिस मृग बिहग तरु ...' कोई मृग छोटा-सा निकले तो जानकी उसको देखने के बहाने राम को देख लेती है। कोई पक्षी बोलता है तो जानकी देख लेती है। इस बहाने देख लेती है। कोई वृक्ष की शाखा झूकती है, जानकी शाखा को ऐसे करती है और राम को देख लेती है। मेरे भाई-बहन, हरि के दर्शन के यह सब मार्ग है। कभी नदी बहती हो उसमें भी हरि का दर्शन हो सकता है। कभी एक लता को देखो, लता के द्वारा भी हरि का दर्शन हो सकता है। पक्षी की चहक में भी हो सकता है। द्वार खुले हो, आग्रहमुक्त चित्त हो जाए, बस।

जिसको साधना करनी है, चित्रकूटी अवस्था जिसको प्राप्त करनी है उसको दो वस्तु का ध्यान रखना। आग्रहमुक्त चित्त और शिकायतमुक्त चित्त। मेरा कोई आग्रह नहीं। आग्रह अच्छी वस्तु है, लेकिन फिर साधु में निराशा आ सकती है। इसलिए गुहराज टीले पर चढ़कर भरतजी को मार्गदर्शन करता है। मार्गदर्शक का कुल और मूल न देखा जाए। मार्गदर्शक वो बन सकता है जो ऊंचे चढ़ने के बाद खुद को प्रदर्शित नहीं करता। भगवान की ओर साधक को

इंगित करता है कि वो देखो चित्रकूट। वो देखो रामजी दिखा रहे हैं। यह मुनिमंडली दिख रही है। भरतजी, आप आओ और आप देखो।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।।

भरत के चरणों को गोस्वामीजी पहले प्रणाम करते हैं। उसके बारे में कुछ ओर आप कहे, ऐसी मेरे एक श्रोता की मांग है। मैं इतना ही कहकर आगे बढ़ूं। धर्मशास्त्र में पहली वंदना गणेश की होती है। 'धर्मशास्त्र' शब्द यूझ करता हूं तब हमारे भारतीय शास्त्र की बात है। पवित्र कुर्रान गणेश से नहीं शरू करेंगे। बाईबल गणेश से नहीं शरू करेंगे। यह उसकी यात्रा है। सबको आदर देना चाहिए। लेकिन भारतीय शास्त्र पहले प्रणाम गणपति को ही करेगा।

कल किसी माताजी ने एक प्रश्न पूछा था कि बापू, मेरे पतिदेव नहीं है और मेरे एक बेटी और बेटा शादी के योग्य हो गए है। उसका जो विधि, उसका जो शुभकार्य करना है। समाज के बुझर्ग मुझे मना करते हैं कि आप सुहागन नहीं है। तो आप यह शुभ कार्य नहीं कर सकती। यह हमारी एक मान्यता है। तथाकथित किसी ग्रंथों में भी ऐसी बातें कह दी हो तो छोड़ो। बाकी मैं इस माताजी को कहना चाहूंगा कि आपके पति हाज़िर नहीं है। मैं दिलसोजी व्यक्त करता हूं। लेकिन आपके पुत्र-पुत्री की शादी की शुभविधि आप कर सकती हैं। क्यों न करे? जिसका पति नहीं उस स्त्री को हम गंगास्वरूप कहते हैं और गंगा को आप रोकते हो कि तू शुभ नहीं कर सकती! जो स्वयं पवित्र से पवित्र प्रवाह है। तो कोई धर्मसिद्धांत मेरी बात कुबूल न करे तो उसके लिए जो भी धर्म के जो हो! बाकी मेरा स्पष्ट मंतव्य है, विधवा माताएं शुभ विधि करा सकती है, कर सकती है। आज्ञा न हो तो आज्ञा देनी चाहिए। प्रार्थना करनी चाहिए कि माँ, तू बैठ। कुछ नियम बदलने पड़ेंगे साहब! कुछ नियम कामचलाउ होते हैं, मौसमी होते हैं। पकड़ के रखना ये ठीक नहीं है। बाहर आना चाहिए। मैं तो वहां तक छूट देता हूं पति की मृत्यु हो जाए और पत्नी चाहे मेरे पति का अग्निसंस्कार मुझे करना है तो उसे करने देना चाहिए। क्यों? यह सब पुरानी बातें हटा दो साहब! इक्कीसवीं सदी में हो। साल-दो साल पहले फ्रीज़ किए हुए आम मत खाओ। वैशाखी आम जो ताजेतरोजे हैं उसका सद्उपयोग करो। कोई बात कोई संदर्भ में कोई काल में मना की भी तो वो उस काल की बात है। बदलनी चाहिए। माताओं को प्रार्थना करके यह सन्मान देना चाहिए। उसको यह आदर मिलना चाहिए।

मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि धर्मशास्त्र जो कहते हैं उसमें प्रथम प्रणाम गणेश को होता है। अर्थशास्त्र में पहली पूजा, पहला प्रणाम लक्ष्मीजी का होता है। अर्थशास्त्र जहां भी आता है, भारतीय मानसिकता के अनुसार उसमें लक्ष्मीजी की पहले पूजा होती है। फ़िर आचार्य 'गणेशाय नमः' कहकर शुरूआत करवा दे ये बात ओर है। लेकिन प्रथम पूजा लक्ष्मीजी की ही होती है। कामशास्त्र में प्रथम पूजा कामदेव की पत्नी रति की होती है। कामक्रीडा, कामशास्त्र का अध्ययन जिसने किया है वो जानते हैं, उसमें पहला आदर स्थान रति को दिया जाता है। मोक्षशास्त्र में प्रथम पूजा ज्ञान की होती है क्योंकि मुक्ति ज्ञान से मिलती है। इसलिए वहां सांख्य में पहली पूजा कपिलाचार्य की होती है। जहां भी न्याय की बात आती है तो कणाद गौतम आ जाते हैं उसमें पहले। और योगशास्त्र आता है तो फ़िर पतंजलि की पहली पूजा होती है। भरतचरित्र प्रेमशास्त्र है इसलिए जब प्रेमशास्त्र शुरू होता है तब तो यही पंक्ति, इसमें पहले भरत की ही चरणवंदना की। उसमें गणेश भी नहीं आता। कोई नहीं आता। सीधा भरत आता है। इसलिए गोस्वामीजी इस पंक्ति में भरत को प्रणाम करते हुए परिचय कराते हैं-

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना।

कल भरत का अर्थदर्शन जिसके बारे में कुछ बात करते थे। भरतजी राम को मिलने जाते हैं तब अयोध्या की अर्थव्यवस्था, संपदा की व्यवस्था, राजकीय व्यवस्था जो सब अर्थप्रधान होती है उसकी बहुत संतुलित व्यवस्था भरत ने की है इसलिए भरत का कुछ विशिष्ट अर्थदर्शन है। कोई किमती मणि हो तो उसको आप किस क्षेत्र में रखोगे धर्मक्षेत्र में, अर्थक्षेत्र में, कामक्षेत्र में, मोक्षक्षेत्र में? मणि कठिन पड़े तो चलो हीरा, एक हीरा। बहुमूल्य हीरा उसको आप धर्मक्षेत्र का मानेंगे, कामक्षेत्र का मानेंगे? यदि शृंगार की बात है तो थोड़ा कामक्षेत्र में आ सकता है यह हीरा। मोक्ष में मानेंगे? कोई रत्न, हीरा, माणेक, मोती यह सब अर्थक्षेत्र के शब्द है जिसका कुछ मूल्य आप पा सकते हैं;

जिसके द्वारा आप और हम कुछ साधन बटोर सकते हैं। उसको अर्थ कहते हैं। अर्थ मानी केवल रूपिया, पैसा ही नहीं। तुम्हारे घर में चार-पांच गाय है तो यह भी अर्थ है, संपदा है। 'गाय' शब्द आया तो मैं मेरे समाज को थोड़ा आहवान करते आगे बढ़ूं। मेरे भाई-बहन, गाय को संभालिएगा। घर में ना संभाल सको तो कुछ संस्था जहां रखती हो वहां कुछ गाय को दत्तक लेकर कुछ राशि देकर गाय की सेवा हो तो संपदा का सद्उपयोग करिए। क्योंकि हमारा यहां अर्थ गाय के द्वारा माना जाता था। हमारा अर्थ गाय है -

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

गाय अर्थ का केन्द्र है आज भी। मैं घूमा हूं 'रामायण' की कृपा से, आपकी शुभकामना से, संतों के आशीर्वाद से घूमता रहता हूं। आफ्रिकन कंट्रिस में जो बस्ती है उसमें किसी लड़के की शादी करवानी है तो कन्यावालें तभी कन्या देते हैं कि तुम्हारे घर में गाय कितनी है? जिसके घर में ज्यादा गाय होती है उसको लड़की दी जाती है। तो गाय का इतना बहुत बड़ा आदरपूर्वक मूल्य रहा है। और इस देश में गाय की सेवा कम होती जाती है! कम तो नहीं, कुछ-कुछ संस्थाएं इतना गज़ब गायों की सेवा करती है। हमारे जैन डाक्टरसाहब कहते थे कि सद्गुरु सेवा संघ के द्वारा जानकी कुंड पर गायों की सेवा हो रही है। यह तो मुझे माहिती मिली है, बाकी चित्रकूट में कई संस्थाएं होगी जो गायों की सेवा करती होगी। मैं तो गांव-गांव के युवकों को आहवान दूंगा, युवकों को खास करके मैं ज्यादा आहवान नहीं करता हूं क्योंकि करूंगा तो लोग पकड़ लेंगे और युवकों का एक ग्रूप बन जाएगा। युवकों का एक मंडल बन जाएगा तो मोरारिबापू का मंडल कहलाएगा! मैं कोई ग्रूप और मंडल नहीं चाहता। सब स्वतंत्र रहे। फिर भी मैं इतना कहूं, ऐसे स्वतंत्र युवक, निष्पक्ष युवक गांव-गांव युवक की एक ऐसी टोली हो जो केवल 'मानस' को समर्पित हो, केवल शास्त्र को समर्पित हो। उसकी बलबुद्धि का उपयोग होना चाहिए। गांव के बुझुर्गो को चाहिए उसको आशीर्वाद दे कि बेटे, अब हम खरे पान है। अब तुम आओ और सेवा करो। और बिना कोई संगठन बनाए, बिना कोई ग्रूप बनाए, बिना कोई नाम दिए केवल-केवल गांव की समस्याएं ऐसे युवकों के द्वारा सुलझाई जाए।

मेरा कोई 'सीताराम परिवार' नहीं है। पूरी वसुधा मेरा परिवार है। हरएक गांव में ऐसे गाय बचेगी। काम भी सरल हो जाएगा। गांव में कोई विधवा बहन-बेटियां, माताजी है कोई उसकी सेवा हो जाएगी। अपनी क्षमता के अनुसार मरीज़ों की सेवा हो जाएगी। बड़ा काम हो सकता है। जिसके पास प्रभु ने धनराशि दे दी है वो उसको मदद करे कोई वाह-वाह की मांग किए बिना। हां, ठीक है, संस्था में जो दान दे उसके नाम लिखने चाहिए। कलियुग में यह जरूरी है, लेकिन मैं तो यह नाम लिखवानेवाले के भी विरोध में हूं। देना हो तो दे, तेरा नाम नहीं आएगा। लेकिन मैं इतना कट्टर नहीं हो जाऊंगा इसमें। नाम से भी कोई लोग गायों की सेवा करे यह हम चाहे। ये वर्षा हो रही है या रात का जमा पानी गिर रहा है? आईए, दो-चार मिनट भगवान नाम का आश्रय करे।

श्री राम जय राम जय जय राम जय जय राम ।

आप सबको मेरी सूचना है, चिंता का कोई कारण नहीं है, लेकिन यह हवा तेज चल रही है और बारिश भी है इसलिए मुझे लगता है हम 'भुशुंडि रामायण' का पाठ कर लें और आरती कर लें। और आप सब धीरे-धीरे अपनी-अपनी जगह से बाहर की ओर जाईए। हड़बड़ी मत करिएगा, शांति से जाईए।

चित्रकूट 'रामचरित मानस' की तो राजधानी है। यहां 'रामचरित मानस' का शासन है। चित्रकूट में रामकथा की महिमा जितनी हो उतनी कहां हो सकती है? काशी में है अवश्य लेकिन वहां पांडित्यसभर 'रामचरित मानस' है। आंसूसभर 'रामचरित मानस' तो केवल चित्रकूट में है। अयोध्या में है तो वो बौद्धिक 'रामचरित मानस' है। वहां बुद्धि का प्रदेश है। ध्यान देना, अयोध्या और जनकपुर दोनों बुद्धि का प्रदेश है। दंडकारण्य और पंचवटी मन का प्रदेश है। लंका अहंकार का प्रदेश है। चित्रकूट चित्त का प्रदेश है।

कथा-दर्शन

'मानस' के हर सोपान, 'मानस' की हर पंक्ति महामंत्र है।
कथा वाचक हो जाना एक वस्तु है और कथा पाचक होना दूसरी वस्तु है।
परमात्मा के गर्भगृह में जाने के लिए शिवचरित्र नितांत आवश्यक है।
शिवरूपी धर्म के तीन नेत्र है-सत्य, प्रेम, करुणा।
कलियुग में केवल रामनाम ही अवलंबन है।
सच्चा गुरु किसी को भयभीत नहीं करेगा।
साधु सबके सन्मुख होता है; किसीके लिए विमुख नहीं।
साधु से कभी पैसा नहीं मिलता, प्रेम ही मिलता है।
साधक का प्रेम जितना गुप्त है, जितना गूढ़ है उतना ही उच्चतम हो सकता है।
सबसे श्रेष्ठ भजन है निष्काम भजन जिसमें हरिदर्शन की कामना भी न हो।
जिसको अंतर्मुख होना है उसको मौन बहुत मदद करता है।
त्याग के कारण रिक्त होते जाएंगे, प्रेम के कारण भरे जाएंगे।
विश्वास का अक्षयवट अखंड होना चाहिए।
प्रेम ज्ञान से भी अधिक फलदायी साधन है।
अपेक्षामात्र हरिमिलन में रुकावट है।
जो केवल बुद्धिप्रधान है, वो कभी आनंदित नहीं रह सकता।
आनंद अकारण होता है; सुख के कारण होते हैं।
अधिकार में अहंकार किसी न किसी रूप में आ ही जाता है।
सबकी यात्रा अपने ढंग से होनी चाहिए।
शिष्टाचार का विवेक और शरणागत तपस्वियों का विवेक बिलग होता है।
परमात्मा के हर निर्णय आदमी को हंसते हुए स्वीकार कर लेना चाहिए।

मानस-भरत : ६

भरत का प्रेम उच्चतम भी है, गुप्त भी है

हम सबने कल परमात्मा की अहेतु और विशेष कृपा का अनुभव किया। 'अति विचित्र भगवंत गति।' उसमें किसी की बुद्धि काम नहीं कर सकती। लेकिन मुझे बड़ी प्रसन्नता यह है कि इतनी किलोमीटर की स्पीड से आंधी-तूफान और बारिश हुई और यह मंडप क्षतिग्रस्त धीरे-धीरे होता चला फिर भी किसी को कुछ भी नहीं हुआ! यही है भगवान की विशेष कृपा का अनुभव चित्रकूट में। अभी यार सोचो, चौदह साल की उम्र से गा रहा हूं; आज सत्तर तक पहुंचा हूं। इतनी लंबी कथा की यात्रा में कई बार ऐसा हुआ है। एक बार गुजरात में बड़ा होनारत, बड़ी मुशलाधार वर्षा अनवरत। शायद हम कालावड में थे और कालावड की कथा में दो दिन शायद कथा बंद रखनी पड़ी। एक बार मेरठ में भी यह हुआ। और चित्रकूट में ही पहली कथा बारिश में हम पूरी कर रहे थे। दो-चार जगह ऐसा हुआ है। एक-दो बार तो मेरे खुद के कुछ पारिवारिक कारण की वजह से कथा मुझको स्थगित करके जाना भी पड़ा था। ह्युस्टन में, अमरिका में कथा थी तो खबर नहीं, आयोजकों ने मुझे बताया नहीं और उसको नव दिन के लिए एक होल नहीं मिला तो कई होल रोज-रोज बदले! शनिवार की कथा एक होल में, रविवार की कथा दूसरे होल में, तीसरे दिन तीसरे! तो यह मेरी पोथीजी भी घूमती रही! और मैंने मेरी कथा में कुछ नियम तोड़े हैं। तोड़े मीन्स जरूरी है। हमारी कथा की परंपरा में ऐसा था कि नव दिवसीय रामकथा हो या सप्तदिवसीय भागवतकथा हो तो उसमें पक्ष नहीं बदल सकते थे। हमने तो कभी पक्ष भी बदल दिए, महिने भी बदल दिए और साल भी बदल दिए कि इंडियन तिथि में शुरू हुई हो अंग्रेजी नए साल में कथा पूरी हो। यह सब कभी-कभी हुआ है, लेकिन आज एक रेकोर्ड चित्रकूट में यह हुआ कि आधी कथा मध्यप्रदेश में हुई और आधी कथा उत्तरप्रदेश में होने जा रही है! और भगवान राम अयोध्या से निकल कर भरतजी को मिलने मध्यप्रदेश गए थे। मेरी पोथी मध्यप्रदेश से राम को मिलने के लिए यु.पी. आ गई! और आज मेरी बहुत प्रसन्नता के साथ इच्छा भी है कि रामजनम करवा दूं।

तो बाप! परमात्मा के हर निर्णय को आदमी को चाहिए हंसते हुए स्वीकार कर लेना चाहिए। आप कल्पना करो साहब, एक क्षण तो मुझे भी व्यासपीठ पर हुआ कि जिस तरह यह लोहे का पंडाल धीरे-धीरे नीचे आ रहा था! लेकिन कहीं भी कोई अप्रिय घटना न घटी और सब मुस्कुराते हुए बाहर निकल गए! मैं घूमता रहा आध-पौना घंटा सब जगह। सब प्रसन्नता से मुझे बता रहे हैं कि परमात्मा की विशेष कृपा नहीं तो और क्या है? यह कामनानाथ की कृपा है। मैं सभी युवक भाई-बहनों को बधाई देना चाहता हूं, इस काम में सब लग गए थे। समस्त युवानों को मेरी व्यासपीठ से मेरी बहुत-बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि आप लोग जुड़ गए। और यह 'रामायण मेला' के इस होल में जो यहां के व्यवस्थापक है इन्होंने तुरंत मंजूरी भी दे दी कि बस, यहां पर कथा शुरू कर दी जाए। इसलिए उनको भी मैं बहुत बधाई देना चाहता हूं। नीलेश-नरेश कम्पनी, यह दोनों ने आकर फिर वो मंज़र खड़ा कर दिया है इसलिए इसको भी मेरी बहुत-बहुत प्रसन्नता दे रहा हूं। और आप सब मेरे भाई-बहनों को, सभी को, पूरे चित्रकूट को यहां के महात्माओं के आशीर्वाद को, यहां के देवताओं को मैं प्रणाम करता हूं कि आपने बहुत विशेष कृपा की और साडे नव बजे उत्तरप्रदेश में लोकाभिरामम् फिर से शुरू हो गया साहब! तो यह भी आनंद की बात है। और मैं तो 'रामायण' की पोथी पर बैठता हूं और आप लोग आरती ऊतारते हैं। कल मैंने ही मेरी 'रामायण' की आरती की थी! सब कहे, बापू, उतरो-उतरो! मैंने कहा, पोथी तो बांधने दे यार! तो परमात्मा की विशेष कृपा का यह अनुभव है।

कल की जो बात एक संत की रह गई वहीं से बाद में शुरू करूं। लेकिन मेरे पास आज एक प्रश्न आया, 'बापू, उच्चतम प्रेम और गुप्त प्रेम में क्या अंतर है?' भरत का गुप्त प्रेम है। दूसरी तरह देखे तो महाराज जनक का भी गुप्त प्रेम है राम के चरण में।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू।
जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।।

इधर गोपियों की बात करूं तो गोपियां प्रेम की ध्वजा है। बहुत उच्चतम प्रेम की बात है वहां। लेकिन मेरे साधक भाई-बहन, यह एक ही प्रेमतत्त्व की गहराई और ऊंचाई की ओर निर्देश है। कहा जाता है कि पेड जितना अंदर होता है उतना उपर जा सकता है। साधक का प्रेम जितना गुप्त है, जितना गूढ़ है उतना ही उच्चतम हो सकता है। और कोई शिखर दिखाई दे और न दिखाई देनेवाली नींव इतनी ही गहरी हो सकती है। इसलिए अप्रगट प्रेम को गुप्त प्रेम कहते हैं और प्रकट प्रेम को उच्चतम प्रेम कहते हैं। दोनों में एक सातत्य है, एक अनुसंधान है। ऐसा भरत का प्रेम उच्चतम भी है, गुप्त भी है। भरत प्रेममूर्ति है, भरत सर्वरूप में भरत है। तो श्री भरत को निषादराज गुह ने, केवट ने एक टीले पर चढ़कर भुजा उठाकर के निमंत्रण दिया कि भरतजी, आईए, यहां से चित्रकूट का दर्शन होता है। भगवान की सुंदर पर्णकुटी दिख रही है, पांच पेड़ है। वैसे सोचो तो पांच पेड़ का अर्थ पंचवटी होता है। चित्रकूट में भी अपनी एक पंचवटी है। एक बिलग ढंग की पंचवटी चित्रकूट में निहित है। पांच पेड़ की ओर संकेत करते हैं। 'पाकरि जंबु रसाल तमाला।' पाकरि, जामुन, आम का पेड़ रसाल और तमाल यह चार पेड़ों के बीच में वटवृक्ष है। कागभुशुंडि जहां साधना करते हैं वहां पांच वृक्ष नहीं है, चार है। भगवान शंकर जहां कैलास में रहते हैं वहां चार नहीं है, दो ही है। यद्यपि कैलास में एक भी पेड नहीं दिखता! चित्रकूट में पांच वृक्षों की चर्चा गोस्वामीजी ने की है।

तो यहां चित्रकूट की यात्रा करके लौटेंगे तो क्या करेंगे? मैं श्रोताओं को निवेदन करना चाहता हूं कि यह पंचवृक्ष के पीछे रहा रहस्य यहां से लेकर घर जाना। यह पांच वृक्ष तुलसी यहां क्या दिखाते हैं? तुलसीजी वृक्षों के द्वारा भी कहते हैं, हमारे हृदय में यह पांच वृक्ष आ जाए तो हमारा दिल भी चित्रकूट हो जाए। हमारे हृदय में यह चार वृक्ष भुशुंडिवाला आ जाए तो हमें भुशुंडि सरोवर जाना नहीं पड़ेगा। हमारे साथ भुशुंडि संग-संग चलेगा। और हमारे हृदय में कैलासवाले यह दो पेड़ आम और बट का पेड़ आ जाए तो हम सदा-सदा कैलासनिवासी है। कैलासनिवासी यानी उपर नहीं! नहीं तो लोग कैलासवासी हो गए, उसका दूसरा अर्थ करते हैं! गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' में कभी-कभी पक्षियों को भी बुलवाकर कुछ रहस्य का संकेत करते हैं। कभी पेड़ों का निर्देश करके संकेत करते हैं। कभी नदियों का निर्देश करके कोई न कोई आध्यात्मिक संकेत करते हैं। कभी मौसमों का वर्णन करके कोई न कोई संकेत करते हैं। हम सब चित्रकूट आए हैं। यहां से मंदाकिनी का जल ले जाए मानो। कोई यहां से चरणरज प्रभु की ले जाए। यहां से कुछ भी आप ले जा सकते हैं। मेरी प्रार्थना तो यही है, इन पांच पेड़ों का जो आंतरिक भाव है वो कम से कम हमारे हृदय में ले जाए तो चित्रकूट हमारे संग संग चलेगा।

तो यह पांच वृक्ष हमें प्रेरणा देते हैं। जंबु यानी जामुन। जामुन का पेड़ बहुत औषधि होती है। जामुन का फल डायाबिटिझ कम करता है। उसका चूर्ण एक आयुर्वेदिक औषधि है। उसकी छाल, उसके पत्ते सब किसी न किसी बीमारी की औषधि है। जामुन का पेड़ आदमी के राग को कम करता है। यहां से हम आम के पेड़ का रस लेकर जाए; जीवन में रस हो। युवान भाई-बहन, दिल में रस होना चाहिए; रस का उद्रेक होना चाहिए। युवान भाई-बहनों के मन में एक विशिष्ट प्रकार की कुदरती, नैसर्गिक मौज होनी चाहिए। तमाल क्या है? तमाल है परमात्मा के वर्ण का वृक्ष। परमात्मा तमाल वृक्ष समान नीले हैं। तमाल वृक्ष का लक्षण हमें परमात्मा के दर्शन के लिए लालायित करता है। तो यहां इन पांचों वृक्ष में कहीं नाम है, कहीं रूप है। वट के नीचे भगवान की कथा वहां

लीला है। जामुन का फल विवेक का भी फल माना जाता है क्योंकि गणेश को अर्पण होता है। इसी भूमि पर भरत का विवेक जागृत होता है और एक अद्‌भुत घटना संपन्न होती है। गुहराज ने पांच वृक्ष दिखाए। वटवृक्ष के नीचे हरिकथा। वट के वृक्ष के नीचे ही कथा होनी चाहिए नियमानुसार लेकिन इसका अर्थ समझो। स्थूल रूप में वट का वृक्ष हो न हो, इसको छोड़ो। लेकिन दो प्रकार के वटवृक्ष का उल्लेख है 'मानस' में और तुलसीदर्शन में। उस वटवृक्ष के नीचे ही कथा होनी चाहिए। एक वटवृक्ष कौन है?

बटु बिस्वास अचल निज धरमा।
तीरथराज समान सुकरमा।

तो तुलसीदासजी ने कहा, बट मानी विश्वास। अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। कथा कहनेवाले में भी विश्वास होना चाहिए और सुननेवाले में भी 'रामचरित मानस' पर विश्वास होना चाहिए। विश्वास की छाया न हो तो वक्ता के वक्तव्य की कोई किंमत नहीं होती। विश्वास की छाया में वक्ता और श्रोता दोनों होने चाहिए। उसी विश्वास को तुलसी ने अक्षयवट कहा है। वो प्रयाग में है। मुझे तो इतना ही संबंध है कि विश्वास का अक्षयवट अखंड होना चाहिए। वो कभी निर्मूल न हो जाए। विश्वास की छाया बनी रहे। बट बहुत घना होता तो उसके नीचे अंधेरा होता है। लेकिन उसके जो लाल फल है, प्रकाश के प्रतीक होते हैं। प्रकाश और अंधेरा एक साथ नहीं होता। मिलता है तो बटवृक्ष के नीचे ही मिलता है। ईश्वर चाहे उजाले में ईश्वर रखे, चाहे अंधेरे में रखे, विश्वास अखंड होना चाहिए।

तो कथा विश्वास की छाया में ही होनी चाहिए। वो पंडाल तो गिर गया लेकिन विश्वास का पंडाल नहीं गिरा है। कोई इन्द्र नहीं गिरा सकता। कोई वायु नहीं गिरा सकता। कोई माई का लाल नहीं गिरा सकता। वहां से उठे, यहां बैठे। विश्वास वो ही का वो ही है। थोड़ा चेहरा म्लान हुआ था अखिलेश का! उसको लगा कि मेरी कथा और ऐसा! मैंने कहा, यार, थोड़ा मुस्कुरा ना! और कहा, चाय पिला! बेटे, पंडाल तो बने, टूटे। गोस्वामी के दर्शन के विश्वास के कई संकेत है। एक तो गोस्वामीजी कहते हैं, ध्रुव विश्वास। ध्रुव का अर्थ है निश्चित्त, अचल। जैसे ध्रुव तारक है। एक ही जगह एक ही दिशा में पूरे जगत को दिशादर्शन कराता है। इसलिए गोस्वामीजी एक विश्वास को ध्रुवतारक से जोड़ते हैं। एक विश्वास तुलसी अक्षयबट को कहते हैं, जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं। एक विश्वास को तुलसीजी कहते हैं, पात्र विश्वास है अथवा विश्वास एक विशिष्ट प्रकार की पात्रता है। तो गोस्वामीजी के दर्शन में विश्वास के कई रूप हमको प्राप्त होते हैं। 'दोहावली' में जाए तो गोस्वामीजी कहते हैं, 'अंगद पद बिस्वास।' गोस्वामीजी कहते हैं, अंगद का पैर विश्वास का प्रतीक है। रावण की सभा में उसने पैर रोपा कि रावण भी पैर उठा ले तो जानकी हार जाऊं। कितना बड़ा विश्वास होगा! एक विश्वास के साक्षात् स्वरूप तो तुलसी की दृष्टि में शिव है। 'भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वारूपिणौ।' दुनिया भले अंधे कहे। तो विश्वास की एक बहुत बड़ी महिमा है साहब! बहुत बड़ी ऊंचाई है।

कल वाली बात। भरत का ही प्रसंग है। चित्रकूट में भरतजी आ चुके हैं। उसके बाद मिथिलेश जनक भी आए। अवध और जनकपुर दोनों समाज के मिलने पर चित्रकूट एक प्रेमराज्य में बदल गया। जनकजी आए तो पुरवासियों को बहुत अच्छा लगा कि महाराज जनकजी पधारे हैं तो कोई ऐसा उपाय निकलेगा जो सबको कुछ न कुछ ढाढ़स दे। जनक महाराणी सुनयनाजी राजमाता कौशल्या को मिलने जाती है। माँ कौशल्या, माँ सुमित्रा, माँ कैकेयी भी तो है। कैकेयी मौन है। रामवनवास, महाराज का अवसान। भरत की थोड़ी डांट, भरत की थोड़े प्रेम की जड़तावश अवहेलना। इन सबके बाद माँ कैकेयी मौन है। कैकेयी की पीड़ भी समझनी चाहिए। मंथरा मौन है। शत्रुघ्न तो है ही। लेकिन कैकेयी का मौन! कभी-कभी जिसको लोग समझ न पाए ऐसी व्यक्ति का मौन बहुत दर्द से भरा होता है। कैकेयी की पीड़ा केवल रघुनाथ समझते हैं। सबसे पहले राम माँ कैकेयी को भेंटे। और रावण के निर्वाण के बाद प्रभु अयोध्या आए तब भी सब से पहले राघव राजभवन में प्रवेश करे और पहले माँ कैकेयी के भवन गए वो क्यों? क्योंकि राम ने देखा, कैकेयी माँ लज्जित है, संकोचग्रस्त है।

मैं कैकेयी पर बोलूंगा अगर गुरु मुझे प्रेरणा करेगा। लेकिन आप कल्पना करो, इस महिला ने चौदह साल कैसे निकाले होंगे! पूरी दुनिया की नफ़रत जिस पर आ चुकी है! कैकेयी का मौन भी बड़ा दर्द प्रकट करता है। राम ही समझ सकते हैं उसको। वो तो पहले मिलते हैं कैकेयी को। अब इस राघव को कोई जिम्मेवार व्यक्ति

कल्पना कह दे तो हम इसको कैसे स्वीकार कर सकते हैं? राम कल्पना है? राम इस राष्ट्र का प्राण है। राम इस विश्व का प्राण है। एक मनुष्य के अंदर सचराचर भरा हुआ था वो राम है। पूरी दुनिया जिसमें डूबी हुई थी। राम राम है। इसलिए तुलसी कहते हैं, 'बंदउँ रघुपति करुणानिधान।' राम करुणानिधान है। राम को सांप्रदायिक कहनेवालों, सुनो, राम कौन है? यदि तुम्हारा प्राण सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। तुम्हारी सांस सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। तुम्हारा आसमान यदि सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। राम ब्रह्म है। राम बिन सांप्रदायिक है। उसको अपने स्वार्थ की फ्रेम मे मत गिरफ्तार करो। जिसके लिए तुलसी कहते हैं, जिसके पैर पाताल में है, मस्तक ब्रह्मलोक में है, यह राघव है।

जनक राजमहिषी माँ कौशल्या को मिलने जाती है। महाराज का शोक व्यक्त किया गया। जानकी मिली। बातचीत शुरू हुई उस समय भरत के बारे में माँ कौशल्या का निवेदन है, आप विवेकनिधि महापुरुष की पत्नी है सुनयनाजी। हम तो कोई निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। मैं समझती हूं कि भरत लौटे सबके हित में है। मेरे मन में एक ही चिंता है और वो भरत की चिंता है। इतना बोलते-बोलते कौशल्या का गला भर आया! मुझे भरत की चिंता है, राम की चिंता नहीं। राम की छाया बनकर चलनेवाली जानकी की भी चिंता नहीं। महाराज दशरथजी मुझे कहते रहते थे कि राम तो रघुकुल का मणि है। मणि के प्रकाश को कोई बुझा नहीं पाता, स्वयं प्रकाशित होता है। लेकिन भरत तो रघुकुल का दीया है। यह दीप बुझ न जाए। भरत का राम के चरण में जो गूढ प्रेम है। उसके मन के अनुकूल निर्णय नहीं हुआ तो मुझे डर लगता है कि भरत को कौन संभालेगा? वार्तालाप होता है। थोड़ी रात आगे बढ़ी है। संकोचवश सुनयना कौशल्याजी से बिनय करती है कि देवी, आप कहे तो जानकीजी को हमारे शिबिर पर ले जाऊं जहां वो अपने पिता को मिल ले। विनय देखो, विवेक देखो 'रामायण' का! सांसारिक दृष्टि से, पारिवारिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी 'मानस' का दर्शन करना चाहिए।

सीयाजू वल्कल वस्त्रधारी है। माँ के साथ आती है। जनक और जानकी मिलते हैं। जनक देखते रह गए कि गंगा ने तीन स्थान को बार-बार विशेष पावन कर दिया लेकिन जानकी, तेरी कीर्ति ने तो अनेक ब्रह्मांडों को पावन किया है! बेटी, तू हमारी कन्या है, बेटी है इसीलिए हम अहोभाव नहीं व्यक्त करते लेकिन बेटा, 'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।' तुने हमारे दोनों कुल को पवित्र कर दिया। विदेहराज ढीले हो गए! फिर जानकी का विवेक देखिए! रात आगे बढ़ रही थी। जानकी को लगा कि जब मेरी सास माँ यहां हो तब मेरा माता-पिता के पास रहना ठीक नहीं। समाज के सास-बहुओं के संबंध को 'रामायण' प्रकाश देती है कि कैसे जीना चाहिए? मैं यहां रहूं वो ठीक नहीं। मुझे मेरी माताओं के पास रहना चाहिए।

भरतचरित्र ऐसे उपर-उपर से गाने में तो आनंद आता ही है, लेकिन भरतचरित्र की तो एक चौपाई भी नहीं छोड़ी जा सकती। हर पंक्ति लेनी पड़ती है। लेकिन हम तो समय में आबद्ध होते हैं। मेरा खुद का अनुभव है। जितनी साल दादा के चरणों में बैठकर 'रामायण' सीखा। सबसे ज्यादा समय दादा ने भरतचरित्र पर दिया है। करीब नव या दस महिने तक भरतचरित्र! मेरे सामने एक-एक पंक्ति खोली जाती थी। बहुत जमकर उस पर मेरे साथ बात हुई। इसमें भरतचरित्र की गरिमा, महिमा, उसकी गहराई का पता लगता है और है भी।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू।
सोन सुगंध सुधा ससि सारू।।

भरत का व्यवहार भूपाल जनक ने सुना। कैसा व्यवहार सुनाया सुनयना ने? मानो सोने में सुगंध हो! यह है भरत का व्यवहार। समुद्र से निकला अमृत और चंद्रमां से टपकता चांदनी के द्वारा अमृत। मानो यह दोनों अमृत का सार हो ऐसा भरत का व्यवहार है। ऐसा भरत व्यवहार के बारे में जनक ने सुना। मानो जनकजी ध्यानस्थ हो गए।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि।
भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।

सावधान होकर हे सुमुखी, हे सयानी रानी सुनो, भरत की कथा भवबंध से मुक्त करनेवाली कथा है। जनकजी कहे, देवी, एक धर्म में मेरी बुद्धि काम कर सकती है; राजनीति में मेरी बुद्धि प्रवेश कर सकती है और ब्रह्मविचार वेदांत में। लेकिन यह भरत और राम का जो प्रेम है उसमें मेरी बुद्धि काम नहीं कर पा रही है।

सो मति मोरी भरत महिमाही।
कहै काह छल छुअति न छाँही।।

राजनीति, धर्मनीति और ब्रह्मनीति तीनों में प्रवेश करनेवाली और निर्णय देनेवाली मेरी प्रज्ञा यह भरत की महिमा में जब प्रवेश करती है तब कहे तो क्या, छाया को भी छू नहीं सकती! प्रेम को इतना उच्चतम स्थान तुलसी ने यहां दे दिया उसकी छाया को मैं छू नहीं सकता, ऐसा भरत का प्यार है।

अद्भुत बात जनकजी यह कह गए कि मेरी समझ में ऐसा आता है देवी कि दुनिया में आदमी का साधन बिलग होता है और साधन के बाद उसका साध्य कुछ बिलग होता है। जैसे आदमी का साधन ज्ञान है, लेकिन ज्ञान की प्राप्ति ही उसका साध्य मात्र नहीं है। कोई भक्त है तो भक्ति उसका साधन है, उसका लक्ष्य है भगवान। सबके साधन बिलग होते हैं। भरत के बारे में जनक का अभिप्राय है कि एक भरत के बारे में सोचता हूं तो लगता है -

साधन सिद्धि राम पग नेहू।
मोहि लखि परत भरत मत एहू।

इस आदमी का साधन भी रामचरण में प्रेम और सिद्धि भी रामचरण में प्रेम। यह आदमी प्रेम के सिवा कुछ जानता ही नहीं, ऐसा मुझे लगता है। ऐसा भरत का जीवन है। और गोस्वामीजी कहते हैं, भरत और राम की प्रीति की चर्चा करते-करते जनक और सुनयना, जो एक आदर्श दंपती है, उसकी रात कट गई। ज्ञान से भी मोह की रात कटती है और यहां तुलसी कहते हैं, विशुद्ध प्रेम की चर्चा करते-करते भी मोह की रात का शमन हो जाता है। प्रेम ज्ञान से भी अधिक फलदायी साधन है। और उनमें भी जब निष्काम प्रेम हो। दशरथ का प्रेम राम के प्रति जो है वो सकाम प्रेम है। यस, निष्काम नहीं है बिलकुल। दशरथकी भक्ति सकाम है। राम को उसने प्राप्त कर लिया यज्ञ के द्वारा। जनकजी ने भी एक यज्ञ करना था। कहा जा सकता है 'मानस' के आधार पर कि दशरथजी का प्रेम सकाम है, जनक का प्रेम निष्काम है।

एक वस्तु और भी मैं आपको बताऊं मेरे भाई-बहन, परमात्मा की कृपा से निष्काम वृत्ति होते हुए भी यदि हमें कोई इतनी बड़ी उपलब्धि हो जाए कि जानकी मिल जाए, तो केवल घर में ही मत रखिएगा। उसका समर्पण करिएगा। एलान कर दीजिएगा, मेरे घर भक्ति है, जिसमें ताकत है आओ, अहंकार तोड़कर ले जाओ। यह होना चाहिए। भक्ति को बांध न ली जाए। एक तीसरा यज्ञ जो जनक का दिखता है, इस यज्ञ का नाम कहते हैं समर्पणयज्ञ। गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' को यज्ञ के साथ जोड़ते हैं, इसलिए भगवान की कथा को भी वक्तालोग, आयोजक लोग ज्ञानयज्ञ कहते हैं। बड़ा प्यारा शब्द है 'ज्ञानयज्ञ।' मेरी बात और है। मेरी जो रुचि है और मेरा जो अनुभव है उसके आधार पर मैं ज्ञानयज्ञ नहीं कहता कथा को, प्रेमयज्ञ कहता हूं। ज्ञान अपनी औकात ही नहीं। ज्ञान कथन कौन कर सकता है? यह महापुरुष लोग कर सकते हैं। इसलिए प्रेम करो। भरतजी का चरित्र भी यज्ञ है। 'मानस' पूरी यज्ञयात्रा है। कहीं सकाम, कहीं निष्काम, कहीं समर्पणयज्ञ, कहीं जपयज्ञ। लेकिन 'मानस' ने दो बात बताई यज्ञ के बारे में कि यज्ञ शुभ होना चाहिए। यज्ञ बड़ी महिमावंत वस्तु है, लेकिन शुभ होना चाहिए। शुभ हो इस दुनिया में और यज्ञ लाभ देते हो लेकिन प्रेमयज्ञ केवल शुभ ही प्रदान करता है। इस यज्ञ का लाभ क्या? खास करके मैं जिसको प्रेमयज्ञ कहता हूं। आप मेरी कथा सुने तो आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा, ध्यान देना। क्योंकि यहां स्वर्ग उपलब्धि है ही नहीं। यह शुभयज्ञ है। लाभवाले यज्ञ की बात ही नहीं। आप कभी यह सोचे कि हम बापू की कथा करवाए और हमारा धंधा ठीक चले, उम्मीद मत करना! हां, तुम्हारी पीढ़ियों का शुभ हो जाएगा यह जरूर है। लाभ की बात छोड़ो।

भगवान याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को शिवचरित्र सुनाते हैं कथा के क्रम में। भगवान शिव सती को लेकर कुंभज के आश्रम में गए। कथा सुनी। सती ने सुनी नहीं। सुख प्राप्त करके, भक्ति का दान देकर महादेव लौटते हैं। रास्ते में वर्तमान त्रेतायुग की लीला चालु थी। राम के दर्शन करते हुए 'सच्चिदानंद' कहकर भगवान शिव भाव में डूब जाते हैं। सती को संदेह होता है। भगवान शिव अंतर्यामी जान गए; देवी, तुम्हारा नारीस्वभाव है। संदेह मत करो। सती को उपदेश लगा नहीं। शिव ने कहा, जाओ, परीक्षा करो। सती परीक्षा करने जाती है और असफल होती है। शिव के पास आकर कहा, मैंने कोई परीक्षा नहीं की। ध्यान में महादेव ने देख लिया और सती ने सीता का रूप लिया यह देखने के बाद शिव चिंतित हुए! हृदय में राम की प्रेरणा से शिव ने संकल्प कर लिया कि सती का यह शरीर रहेगा तब तक मेरा और उनका कोई संबंध नहीं। कैलास पहुंचते हैं। अपनी प्रतिज्ञा का निर्णय करके वो सत्तासी हजार साल तक बैठ जाते हैं समाधि में। इतने साल बाद शिव जागते हैं। सती सन्मुख जाती है। भगवान शंकर रसप्रद कथा सुनाते हैं। उसी समय दक्षयज्ञ की बातें आई। सती मानी नहीं। दक्षयज्ञ में गई। पति का अपमान न सहन करने के कारण यज्ञकुंड में जलकर भस्म हो जाती है। जलते समय सती ने प्रभु से मांगा कि जनम-जनम मुझे शिव चरण में अनुराग हो। इसी कारण सती का दूसरा जन्म पार्वती के रूप में हुआ। बुद्धि जल गई। श्रद्धा प्रकट हो गई। एक दिन नारदजी आए। पार्वती का नामकरण किया; भविष्यकथन किया, तुम्हारी बेटी जो तप करे तो उसे तो शिव की प्राप्ति होगी। पार्वती ने कठिन तप किया है। आकाशवाणी हुई, 'हिमालयपुत्री, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो रहा है। शिव की प्राप्ति होगी।' धन्य हुई। यहां भगवान शंकर पर राम प्रसन्न होते हैं। प्रगट हुए। शिव से शादी करने का वचन मांग लिया और भगवान अंतर्धान हुए। फिर देवताओं की शिव के यहां पुत्र प्राप्त हो इसलिए ब्याह की योजना।

नंदी की सवारी। अनेक भूत-प्रेत की सृष्टि भगवान शंकर की बारात में है। बारात हिमालय प्रदेश पहुंचती है। सन्मान करनेवाले सब मूर्छित हो गए! महाराणी मैना भी आरती उतारने में बेहोश हो गई! नारद ने मैना को कहा कि देवी, पार्वती को आप पुत्री मानते हैं लेकिन असल में तो आप पार्वती की पुत्री हैं! पूरे जगत की माँ यह पार्वती है। नारद ने जब उद्घाटन किया तब सब पार्वती के चरणों में प्रणाम करने लगे। मेरा कहना इतना ही कि शक्ति अपने घर में होती है, शिव अपने द्वार पर होते हैं लेकिन नारद जैसा कोई सद्‌गुरु हमें उसका परिचय न कराये तब तक न शिव समझ में आता है न पार्वती समझ में आती है। नगाधिराज हिमालय और मैना ने अपनी बेटी का कन्यादान भगवान शिव के हाथ में किया। बिदा की बेला आई। हिमालय अपनी बेटी को विदाय देते हैं।

शिव पार्वती को लेकर कैलास पहुंचे। कुछ काल बीता। पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। पुरुषार्थ के प्रतीक ऐसा कार्तिक स्वामी, षड्मुख का जन्म होता है। ताडकासुर का विनाश करते हैं। एक बार भगवान शंकर कैलास के वटवृक्ष के नीचे सहजासन में बिराजित है, पार्वती भल अवसर पाकर आती है। भगवान शिव अपनी प्रिया को आदर देते हैं और पार्वती शिव से जिज्ञासा करती है कि हे प्रभु, मेरे मन में अभी यह निर्णय नहीं हो पाया कि राम ब्रह्म है कि सामान्य मनुष्य है? रामकथा के माध्यम से आप मुझे राम के बारे में कहो। भगवान शिव कहते हैं, आप धन्य है। आपके समान कोई उपकारी नहीं। राम कौन है, देवी, 'बिनु पद चलई ...' यह ब्रह्मत्व है देवी। किस लिए निराकार नराकार हुआ? निर्गुण सगुण हुआ? व्यापक व्यक्ति बन गया? इसके कई कारण है और कोई कारण का मोहताज वो परमतत्त्व है भी नहीं। कार्य-कारण सिद्धांत से वो पर है। फिर भी ऐसी स्थिति धरती पर जब-जब होती है तब परमात्मा विधविध रूप लेकर अवतार लेते हैं। राम अवतार क्यों हुआ इसके पांच संकेत 'मानस' में है। शिव ने कथा सुनाई जय-विजय की। सनतकुमार के शाप के कारण वो असुर देह प्राप्त करते हैं। उसकी मुक्ति करने के लिए परमात्मा राम आते हैं। दूसरा कारण बताया सतीवृंदा का। एक सती के कारण भगवान विष्णु को शाप मिला उसके कारण प्रभु को प्रकट होना पड़ा। तीसरा कारण देवर्षि नारद ने भगवान को शाप दिया इसीलिए भगवान को अवतार लेना पड़ा। चौथा कारण स्वयंभू मनु और शतरूपा, उसने तपस्या नैमिष में की। प्रभु ने उसको वरदान दिया। इसीलिए वो रघुकुल में पुत्र बनकर भगवान राम वहां गए। पांचवां और अंतिम कारण, राजा प्रतापभानू कपटमुनि में फंस गया! कालकेतु राक्षस ने सब योजना बनाई। ब्राह्मणों ने शाप दे दिया। प्रतापभानू का पूरा कुल राक्षस कुल में परिवर्तित हो गया।

> राम इस राष्ट्र का प्राण है। राम इस विश्व का प्राण है। एक मनुष्य के अंदर सचराचर भरा हुआ था वो राम है। पूरी दुनिया जिसमें डूबी हुई थी। राम राम है। इसलिए तुलसी कहते हैं, 'बंदउँ रघुपति करुणानिधान।' राम करुणानिधान है। राम को सांप्रदायिक कहनेवालों, सुनो, राम कौन है? यदि तुम्हारा प्राण सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। तुम्हारी सांस सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। तुम्हारा आसमान यदि सांप्रदायिक है तो राम सांप्रदायिक है। राम ब्रह्म है। राम बिन सांप्रदायिक है। उसको अपने स्वार्थ की फ्रेम में मत गिरफ़्तार करो।

रावण, कुंभकर्ण ने बड़ी कड़ी तपस्या की। बड़े दुर्गम वरदान प्राप्त किए और पूरी दुनिया को वो त्रस्त करने लगे। धरती अकुला गई। गाय का रूप लिया। ऋषिमुनि और देवताओं के संग ब्रह्मभवन पर दस्तक दिया। ब्रह्मा की अगवानी में सबने मिलकर परमात्मा को पुकारा। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। वैसे कोई कारण नहीं और ऐसे देखा जाए तो कुछ कारणवश मैं रघुकुल में अवतार धारण करूंगा।' पूरे प्रसंग का मेरी व्यासपीठ सार इतना ही निकालती है कि पहले आदमी को पुरुषार्थ कर लेना चाहिए कि कैसे समस्या मिटे और परमात्मारूपी समाधान हम को प्राप्त हो। इसमें पहला कदम पुरुषार्थ है लेकिन हम जीव है। हमारे पुरुषार्थ की सीमा है। दूसरा अध्याय शुरू होता है परमात्मा को पुकार। वहां भी हमारी सीमा है। प्रार्थना का प्रदेश पूरा होने के बाद हम प्रतीक्षा करे कि समाधान होगा, हरि मिलेगा, प्रतीक्षा करे। और फिर जाकर जो घटना घटती है उसको कहते हैं राम प्राकट्य।

ए आवशे, ए आवशे, ए आवशे.

तुं प्रतीक्षामां अगर शबरीपणुं जो लावशे.

गोस्वामीजी हमें श्री अयोध्याजी ले चलते हैं, जहां ठाकुर का प्राकट्य होनेवाला है। अवधपुरी एक सार्वभौम साम्राज्य। सूर्यवंश, रघुवंश का शासन। वर्तमान महाराज अवधपति, जिसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का संगम हुआ है। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। सब पवित्र आचरण में डूबी रहती है। राजा-रानी मिलकर भगवद्भक्ति करते हैं। तुलसीजी ने हमारे जीवन में राम प्रगट हो जाए, विश्राम प्रगट हो जाए, अभिराम प्रगट हो जाए, विराम, आराम प्रगट हो जाए इसकी एक छोटी-सी फोर्म्यूला बता दी कि कैसा दाम्पत्य हो तो राम प्रगटे जीवन में? पुरुष अपनी पत्नी को प्रेम दे और स्त्री को चाहिए अपने पति को आदर दे। एक दूसरे प्रेम और आदर का आदान-प्रदान कर और मिलकर परम की भक्ति करे तो उसके दाम्पत्य में राम जैसा पुत्र प्रकट हो सकता है। लेकिन मुश्किल यह है कि पति-पत्नी का दाम्पत्य जैसे-जैसे इक्कीसवीं सदी आ रही है, बिगड़ता जा रहा है! एक पवित्र दाम्पत्य राजा और रानी का फिर भी एक ग्लानि है महिपति के जीवन में कि पुत्र नहीं है। मेरा रघुवंश मेरे से समाप्त हो जाएगा?

मेरे भाई-बहन, जगत में जब किसी भी द्वार पर समाधान प्राप्त न हो तब आखिर में अपने गुरुद्वार चले जाना; अपने गुरु के पास चले जाना। सुख और दुःख के समिध लेकर वशिष्ठजी के पास गए, भगवन्, हमारे जीवन में पुत्रसुख नहीं है? शृंगि को बुलाया है पुत्रकामेष्टि यज्ञ के लिए। शुभ यज्ञ करवाया। भक्ति सहित आहुतियां डाली गई और आखिरी आहुति के साथ यज्ञनारायण स्वयं अग्नि के रूप में अग्निकुंड से प्रसाद की खीर लेकर प्रकट होते हैं। तीनों रानियों ने यज्ञ प्रसाद पाया। तीनों रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। कौशल्याजी के गर्भ में साक्षात् हरि पधारे।

पंचाग अनुकूल हुआ। योग, लगन, ग्रह, बार, तिथि; पांच का अर्थ मेरी व्यासपीठ कहना चाहती है। ज्योतिष का तो यह सब पंचाग हुआ ही लेकिन योग मानी प्रेमयोग, भक्तियोग। लगन मानी हरिनाम की लगनी। ग्रह मानी भगवान वशिष्ठ का अनुग्रह। ग्रह मानी अनुग्रह गुरु का। बार मानी एतबार। बार मानी भरोसा। यह चार जिसमें आ जाए भक्तियोग, रामनाम की लगन, गुरु का अनुग्रह और एतबार तो पांचवां सूत्र, परमात्मा स्वयं अतिथि बनकर जिस तिथि में आए वो नवमी तिथि बन जाती है। यह पांचों आज अनुकूल हो गये। त्रेतायुग, चैत्रमास, नवमीतिथि, मधुमास, शुक्लपक्ष, अभिजित है, मध्य दिवस है। पूरा अस्तित्व प्रफुल्लित था।

देवताओं के समूह भगवान की गर्भस्तुति का गायन करके अपने-अपने स्थान ले रहे हैं। उसी समय पूरे जगत में जिसका निवास है, जिसमें पूरा जगत वास कर रहा है ऐसा ब्रह्म, ऐसा परमात्मा, ऐसा भगवान, ऐसा ईश्वर, ऐसा प्रभु, ऐसा परमतत्त्व माँ कौशल्या के प्रासाद में प्रकट हुए हैं। माँ को ज्ञान हुआ तब प्रभु ने मुस्कुरा दिया! भ्रमित होकर सब रानियां दौड़ आई! आनंद में डूबी अयोध्या ने महाराज को खबर दी। महाराज ने जब कानों से सुना, मेरे घर पुत्र जन्म हुआ, ब्रह्मानंद में महाराज डूब गए! कौन निर्णय करेगा कि यह ब्रह्म है? गुरु के बिना निराकरण कौन करेगा? गुरु ब्राह्मणों के साथ पधारे। भ्रम निरसन हुआ। ब्रह्म प्रकट हुआ, यह बात सुनते ही परमानंद में डूबे महाराज दशरथजी ने सबको बुलाकर कहा, बाजे बजाओ, बधाईयां गाओ, पूरी अयोध्या में उत्सव मनाओ। त्रिभुवन में जयजयकार होने लगा, बधाई हो! चित्रकूट की व्यासपीठ से आप सबको रामजनम की बधाई हो।

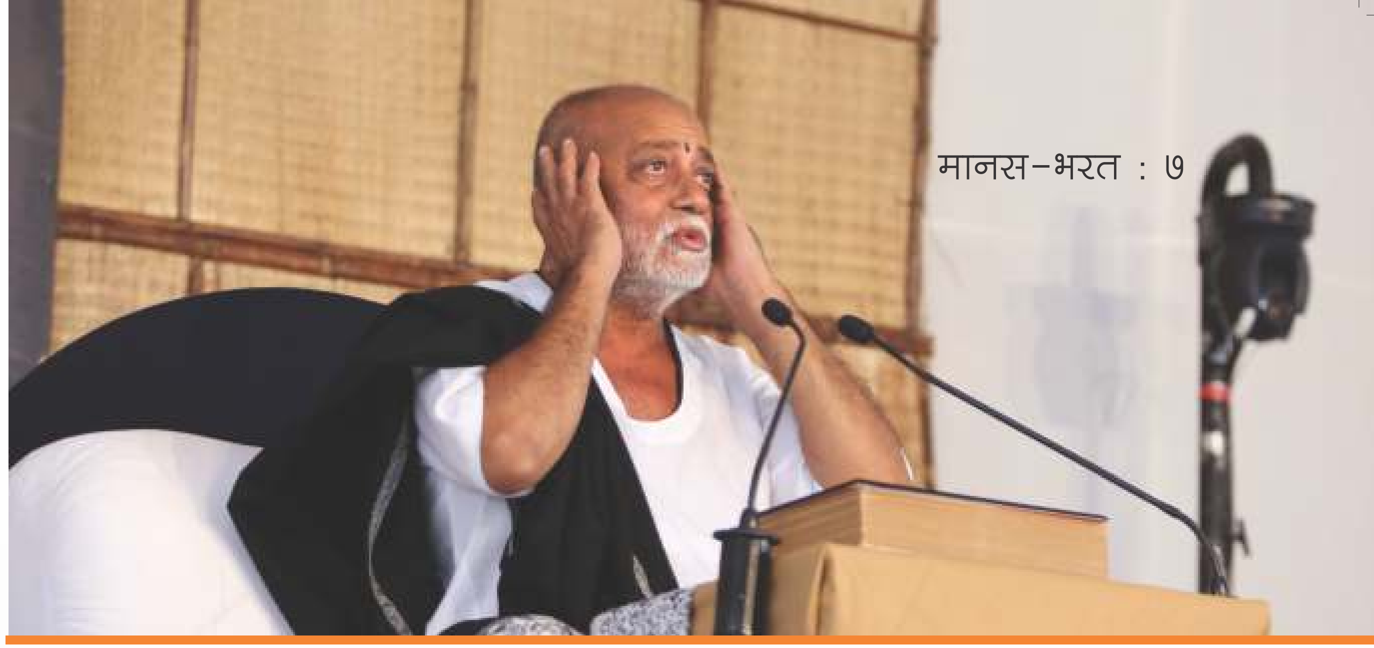

भरतजी काम को नहीं चाहते और रति को जनम-जनम चाहते हैं

'मानस-भरत', जिसका दर्शन हम और आप मिलकर संवादी सूर में कर रहे हैं। कुछ ओर विचार करें। भरत को 'मानस' में सब प्रकार के साधु हो ऐसा एक प्रमाणपत्र मिला है। यद्यपि किसी साधु को कोई प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं है। लेकिन कहीं प्रेमपूर्ण साधुता दृष्टिगोचर होती है तब अस्तित्व के सभी अंग अपने को धन्य करने के लिए, मुखर होने के लिए बेताब हो जाते हैं। उसको बोलना ही पड़ता है। वो बोले बिना नहीं रह सकते। साधु की व्याख्या तो बहुत मिलती है। 'रामचरित मानस' में भी आप देखते हैं कि कई जगह संत महिमा, साधु महिमा का वर्णन है। 'बालकांड' के आरंभ में भी आप जानते हैं, 'बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोउँ।' ऐसा कहके संत की महिमा की।

साधु चरित सुभ चरित कपासु। निरत बिसद गुनमय फल जासु।।

जो सही दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा।।

साधु-संत, साधु समाज को प्रयाग कह दिया आदि-आदि। बीच-बीच में कोई विशिष्ट घटना पर परम विशेष व्यक्ति को भी साधु कह दिया गया 'मानस' में। 'अरण्यकांड' में स्वयं नारदजी भगवान से जिज्ञासा करते हैं कि आप मुझे संतों के लक्षण बताएं। और भगवान ने वहां संत के लक्षणों की चर्चा की है। बहुत जगहों पर यह आपको मिलेगा। 'उत्तरकांड' में भी भरतजी की जिज्ञासा हनुमानजी के द्वारा पूछी गई। साधु की चर्चा हुई है। लेकिन तीरथराज प्रयाग में जब भरतजी पहुंचे और उस समय स्वयं त्रिवेणी में एक आवाज़ उठी। हमारे यहां भूमि भी बोल सकती है। जलराशि भी बोल सकती है। आकाश भी बोल सकता है। वायु भी बोल सकता है। सब में हमनें दैवत्व का संचार समझा है। तो वहां त्रिवेणी एक पंक्ति बोलती है, जो बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति है। आईए, उस पर थोड़ा ध्यान दें-

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधु।

रामचरन अनुराग अगाधु।।

हे बाप! भरत, आप सब प्रकार से साधु है। तो यह प्रश्न बार-बार उठा है जिज्ञासुओं की ओर से कि साधु तो समझ में आता है। संत समझ में आता है, लेकिन सब बिधि साधु का मतलब क्या? सर्वांग साधु, सर्वसार साधु, सर्वगत साधु, सर्वपर साधु का क्या मतलब? मैं इसलिए इस चर्चा में जा रहा हूं कि एक संत की जिज्ञासा है यह कि बापू, आपकी व्यासपीठ की क्या राय है, सब बिधि साधु का क्या मतलब है? इसीलिए मैं वहीं से शुरू करूं बाप!

सब बिधि साधु का मतलब क्या? कुछ साधु की व्याख्या शास्त्रों में होती है। कुछ समाज किसी साधु के चरित्र को देखकर व्याख्या करने लगता है। कुछ व्याख्या अंत:करण की प्रवृत्ति के अनुसार होती है। आईये, हम सब मिलकर संवादी

सूर में साधु का दर्शन करें, जो भरत है। केन्द्र में भरत है। नाट्यशास्त्र के एक महान मुनि हुए हैं भरत मुनि। नृत्य-नाट्यों के, रसों के बड़े बादशाह भरत मुनि का पूरा मत है नाट्यशास्त्र में। उसने अर्थ किया है, 'भ' का अर्थ है भावपूर्ण स्थिति। 'र' का अर्थ है किसी भी स्नेह से भरा राग और 'त' का अर्थ उसके साथ जुड़ करके सहायक बननेवाला किसी भी वाद्य का ताल। तालवाद्य का ताल। उसको भरत कहा है। मैं जब इस व्याख्या के अनुसार भरत का दर्शन करता हूं तो भरत के भाव की तो कोई सीमा नहीं! भरत का राग। आप कहेंगे, भरत का राग मानी भरतजी की आवाज़ अच्छी थी? भरतजी अच्छा गाते थे? हां, काश! हमारे कान सुन पाए! भरतजी गाते थे। भरतजी से ही कैसे गाया जाए वो गोपियां सीखी है। एक अर्थ में भरत से दीक्षित है गोपियां। लेकिन कभी-कभी जिससे हम सीखते हैं उसको गाते नहीं सुनते हैं और सीखनेवाले गाने लगते हैं! जो मेरा खुद का अनुभव है। मेरे सद्गुरु भगवान बहुत सुंदर गाते थे लेकिन कभी गाते नहीं थे। यह बिलकुल विरोधाभास है। ऐसे भरत 'मानस' में डोलते दिखते हैं, विह्वल बचन में दिखे हैं। लेकिन कौन-से राग में भरत गाते हैं? भावपूर्ण तो है। स्नेहमूर्ति तो है। प्रेममूर्ति तो है भरत। राग का अर्थ यदि करें तो श्री भरतजी की भक्ति को एक अर्थ में रागात्मिका भक्ति भी मानी गई है। जिसका समस्त राग प्रभु में प्रविष्ट है, समाविष्ट है। जहां रति होगी वहां राग होगा लेकिन भरत की विशेष अवस्था है कि वो काम को नहीं चाहते, रति को चाहते हैं। यह उसकी भक्ति का विशेष पहलू।

मैंने दूसरे दिन शायद आपसे कहा कि मेरी इच्छा है यदि प्रवाह चला तो भरत का धर्मदर्शन, भरत का अर्थदर्शन, भरत का कामदर्शन, भरतजी का मोक्षदर्शन, भरत का सत्यदर्शन, भरत का प्रेमदर्शन और भरत का करुणादर्शन इन सात बिंदुओं को छूने की कोशिश करूं। मैंने भरत के धर्मदर्शन के बारे में तो मध्यप्रदेश में कहा। दो-तीन दिन बीच में भरत के जीवन का अर्थ क्या है? भरत किसको जीवन मानते हैं? उसकी भी किसी न किसी संदर्भ में प्रगट-अप्रगट रूप अर्थचर्चा होती रही। भरत का कामदर्शन क्या है? भरत और कामदर्शन! जरा विचित्र लगेगा। भरत तो निष्काम महापुरुष है। और मेरी व्यासपीठ कह रही है भरत का कामदर्शन! हां, भरत ने कामदर्शन किया है। भरत का अपना कामदर्शन है। लेकिन विरोधाभास बहुत मिलेगा। वो काम का अनादर करते हैं, नहीं चाहते हैं। और रति को जनम-जनम चाहते हैं। इस भरत को समझना बहुत मुश्किल है। अंधेरे को और उजाले को एक साथ समझना बड़ा मुश्किल है। संयोग और वियोग को एक साथ महसूस करना यह बहुत कठिन काम है, जो श्री भरतजी में दिखता है। वह रति चाहते हैं। रति चाहने के कारण भरत का एक विशिष्ट कामदर्शन 'मानस' में प्राप्त होता है। जैसे-जैसे भरतजी चित्रकूट के निकट पहुंचते हैं तो भगवान की छबि उनको बिलग-बिलग रूप में दिखने लगी! इन में एक दर्शन भरत की आंखों ने जो पकड़ा है। एक जो क्लोज़ अप भरत की आंखों ने लिया है कि सीता-राम चित्रकूट की इस भूमि पर बैठे हैं मुनि मंडली के बीच और आगम, निगम, पुरान की चर्चा हो रही है। बड़ा सत्संग चल रहा है। उसीमें राम-जानकी बिराजमान है। और इस छबि को भरत अपनी आंखों से खिंचते हैं। वहां भरत का कामदर्शन दिखता है। तुलसी की प्रसिद्ध पंक्ति-

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा ।
जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा।।

भरतजी ने जनम-जनम रति मांगी लेकिन काम को ठुकराया। तो रति तो भरत को मिली। लेकिन रति मिलने पर भी श्री भरतजी को जिस भाव की ऊंचाई पर पहुंचना है वहां थोड़ा समय लग रहा है।

एक बिधि साधु होता है वो कभी-कभी थोड़े जटिल बन जाते हैं! उसमें स्वीकार की संभावना थोड़ी कम होने लगती है। सब बिधि साधु का यह एक बहुत बड़ा दर्शन है कि वो सब दरवाजे खुल्ले रखते हैं। तो रति की जब यह बात आई। पूर्ण शिखर नहीं सर हो रहा था। भरतजी ने मन में संकल्प किया कि कामदर्शन भी करना चाहिए। लेकिन उसका संकल्प बड़ा प्यारा सिद्ध हुआ कि यदि मुझे काम का दर्शन करना है तो मैं आम को अतिक्रमण करके मैं राम में दर्शन करूंगा। एक विजातीय युग्म को केवल एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो, केवल इतनी ही काम की व्याख्या नहीं है। कामना तो सत्ता की भी होती है; कामना तो प्रतिष्ठा की भी होती है; कामना तो कीर्ति की भी होती है; कामना तो इस संसारियों को, जिसको शास्त्रकार सुतेषणा कहते हैं, संसार बढ़े ऐसी भी कामना होती है। भरतजी ने कहा, मेरे में सत्ता की कामना नहीं है। मुझे कीर्ति की कामना नहीं है। मेरा प्रेम राम के चरणों में निरंतर बढ़े।

तो भरत को बहुत एंगल से देखना पड़ेगा। भरतजी संसारी है। उसको भी दो पुत्र हुए हैं। सब बिधि साधु का काम प्रेम के प्रदेश में पादुका पाने के बाद, उसका काम दीक्षित हो जाता है। भरत का काम मंदाकिनी में नहा-धोकर लौटा था अयोध्या। अयोध्या है कर्मनगरी। चित्रकूट है प्रेमनगरी। प्रेमनगरी से दीक्षित हुआ था काम। काम को गालियां न दी जाए। तुलसी के 'रामचरित मानस' में दो-टूक विशिष्ट कामदर्शन है। श्री भरत का यत्र-तत्र इस विशिष्ट रूप में यह रतिदर्शन प्राप्त होता है। ऐसे भरत को त्रिवेणी ने 'सब बिधि साधु' कहा। 'सब बिधि साधु' का मतलब क्या? यह कोई धोती-कूर्ता पहना है, तिलक लगाया है, माला लगाई है, विरक्त वेश है, संन्यासी वेश है, यह है? यह महिमावंत है जिससे हमें परख लगे कि यह कोई विशिष्ट महापुरुष है अथवा तो कोई साधुजन है। लेकिन 'मानस' में सब बिधि साधु का परिचय इतनी जगह से प्राप्त होता है और वो है भरत।

युवान भाई-बहन, खास कर के आपको कहूं कि 'साधु' शब्द आता है तो साधु किसको कहे? फ़िर सब बिधि साधु। अपनी आंख से परखना। इतनी बातें जिसमें हो उसको सब बिधि साधु समझना। यह भरत है। लेकिन भरत में इतनी वस्तु है। और यह वस्तु भरत के बाद किसी में न हो ऐसे द्वार बंद भी मत कर देना। कईयों में होता है। यद्यपि भरत भरत है। इसके समान ओर कोई नहीं हो पाएगा। परमात्मा के ब्रह्मांड में, अस्तित्व में पुनरावृत्ति नहीं होती है। एक समान कोई नहीं होता है। भरत भरत है। भरत के समान भरत। सब बिधि साधु, जो चित्रकूट का साधु भरत है। एक, जिसको माँ प्रमाणपत्र दे उसको सब बिधि साधु समझना। बाप नहीं; बाप का कोई ठिकाना नहीं! इसका मतलब मैं बाप की आलोचना नहीं कर रहा हूं। पिता का दूसरा स्थान उपनिषदों ने रखा है। 'मातृ देवोभव।' फिर 'पितृ देवोभव।' पिता की महिमा है। अवश्य, यह पालक है लेकिन माँ माँ है। माँ से भी प्रसूता नहीं, जन्मदात्री नहीं, सौतेली माँ प्रमाणपत्र दे। जिसने हमें जनम नहीं दिया। सौतेली माँ कौशल्या यह प्रमाण करती है भरत के लिए कि बाप! तू ऐसा है।

दूसरा, तीर्थ जब बोले किसीकी साधुता के बारे में। नदियां बोले, पहाड बोले, आकाश बोले। यह प्रकृति के तत्त्व जब मुखर हो जाए किसीकी साधुता देखकर तब सब बिधि साधु को एक दूसरा प्रमाणपत्र मिलता है। तीसरा, कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु किसी व्यक्ति के बारे में रह न सके और बोलने लगे तो समझना, यह सब बिधि साधु है। और स्वयं वेद भगवान जब मुखर हो जाए किसी व्यक्तित्व के बारे में बोलने के लिए तब समझना यह सब बिधि साधु है। और पूरा समाज और समाज का चारों आश्रम जिसके बारे में अहोभाव प्रगट करने लगे तब समझना सब बिधि साधु। यहां कोई गणवेश, युनिफोर्म की बात ही नहीं है। क्यों तिलक? तिलक की महिमा है। कोई गलत अर्थ न चला जाए समाज में। मैं इसीलिए बार-बार कहता हूं। तिलक मैं भी करता हूं। अपनी आचार्य परंपरा होती है। हम निम्बार्की है इसलिए बिंदी करते हैं। रामानंदी संप्रदाय के लोग जो 'श्री' करते हैं, उर्ध्वपुंड करते हैं। शैव त्रिपुंड करते हैं। सबका अपना-अपना परिचय है। लेकिन साधुता इसमें सीमित नहीं होती है। हमारे गुजराती में तो नरसिंह मेहता ने भी परिभाषा की जो गांधी ने विश्व में फैला दी। वैष्णवजन मानी साधु। 'विनयपत्रिका' में स्वयं गोस्वामीजी ने एक पद गाया; जिसमें गोस्वामीजी ने साधु होने के लिए यह नहीं कहा, मैं भगवे कपड़े पहनुं। यह सब की महिमा है। कोई गलत मेसेज न जाना चाहिए।

वर्णाश्रम का यह युग नहीं रहा। व्यवस्था के रूप में वर्णाश्रम हो ठीक है। लेकिन यह युग वर्णाश्रम का नहीं है। फ़िर भी कोई क्षत्रिय, कोई ब्राह्मण, कोई वैश्य, कोई शूद्र है, मुबारक। लेकिन चारों को चाहिए ईश्वर को प्रार्थना करे, हमें किसीभी वर्ण में जनम दिया लेकिन हे हरि, स्वभाव साधु का देना। हमारी प्रकृति साधु की हो। रोहीदास को हमनें चमार कहा लेकिन साधु है। चोखा मेला को हमने दलित कह दिया लेकिन साधु है। साधु स्वभाव हो। यह साधु लोग क्या करते हैं? यह चित्रकूट, अयोध्या, वृंदावन अथवा तो किसी भी तीर्थक्षेत्र में अपनी कुटियां, अपना आश्रम, अपनी साधना जो अपनी-अपनी मस्ती हो इसमें आखिर में साधु का स्वभाव क्या? सुख-दुःख सम बुद्धि सहन करना।

जिसको सौतेली माँ प्रमाणपत्र दे। पूरा समाज का सभी आश्रम प्रमाणपत्र दे। वेद जिसकी साधुता को सराहे। तीर्थ आवाज़ करके जिसकी साधुता को साधुवाद दे। अपना गुरु, बुद्धपुरुष जिसके बारे में बोले। उसको सब बिधि साधु समझना। भरत सब बिधि साधु है। उसमें माँ का निवेदन सुनिए सबसे पहले। कौशल्या ने भरत के बारे में क्या कहा?

कौशल्या के मुख से निकली यह सबबिधि साधु की माहिती देनेवाली यह मंगलमयी पंक्ति-

भरत सील गुन बिनय बड़ाई ।
भायप भगति भरोस भलाई ।।

तो माँ कौशल्या भरतजी को एक प्रमाणपत्र देती है। आठ लक्षण माँ ने एक पंक्ति में कहे। यह आठ लक्षण किसी भी व्यक्ति में आप देखो तो समझना यह साधु शायद सबबिधि साधु है। कहीं भी कोई गणवेश का वर्णन नहीं; जाति का वर्णन नहीं; कोई वर्ण का वर्णन नहीं; कोई भाषा का वर्णन नहीं। भरत की आठ वस्तु भरत को सबबिधि साधु सिद्ध करती है। माँ के शब्दों ने और वो भी सौतेली माँ के शब्दो में। कौन साधु? पहला लक्षण, जिसमें शील हो। साधु में बल कितना यह भूलो। साधु में शील कितना यह साधु की पहली पहचान है। हमारी सौराष्ट्र की गंगासती पूरा पद गा गई उस पर। किसको नमन करोगे? किसको प्रणाम करोगे? शिष्टाचार में सबको प्रणाम करो लेकिन एक तत्त्व ऐसा है, जहां बार-बार प्रणाम करो वो कौन? साधु है। और कैसा साधु? शीलवंत साधु। जिसको गंगासती कहती है-

शीलवंत साधुने वारे वारे नमीए पानबाई,
जेनां बदले नहीं व्रतमान...

साधु बलवान भी होना चाहिए जरूर। आत्मबल से भरा होना चाहिए। विश्वासबल होना चाहिए उसमें। भरोसे का बल होना चाहिए। लेकिन साधु का पहला लक्षण माँ कौशल्या कहती है, शील है। भरत ने बल की मात्रा में शील को ज्यादा पूजा है। दूसरा लक्षण माँ कौशल्या ने कहा, गुणवंत हो। गुणवंत मीन्स सद्गुण। जैसे हनुमानजी के बारे में गोस्वामीजी कहते हैं, 'सकल गुणनिधानम्।' सब गुण। कोई व्यक्ति ऐसी होती है कि हम अपनी आंखों से ठीक से देखे तो गुण ही गुण नजर आए, दोष दिखे ना। ऐसे भी लोग होते हैं। तो भरत का शील उसकी साधुता का परिचायक है। साधु का तीसरा लक्षण है विनय, विनम्रता, सरलता। 'शीतलता सरलता मैत्री...' गोस्वामीजी साधु के लक्षणों की अन्यत्र चर्चा करते भी यह लक्षण का निर्देश करते हैं। विनम्रता है, सरलता है। बड़ाई, बड़प्पन होते हुए सरलता है। ये मुश्किल है। एक ओर पूरी दुनिया में बड़प्पन मिलता हो और फिर भी आदमी सरल-तरल रहता हो यह साधु में ही हो सकता है। अथवा तो ये जिसमें भी हो उसको साधु मानना। शील, गुण, नम्रता, उंचाई-बड़प्पन। भायप; जिस व्यक्ति में भाईचारा हो। आज के संदर्भ में भायप का अर्थ करूं। यह हिंदु, यह मुस्लिम, यह बौद्ध, यह जैन, यह इसाई ऐसा भेद नहीं। रामराज्य की एक पंक्ति है 'उत्तरकांड' में-

सब नर करहिं परस्पर प्रीति ।

सब के बीच कें भाईचारा यह साधु का लक्षण है। जिसके जीवन में दीवार हो ही ना, द्वार ही द्वार हो।

काबे से बुतकदे से कभी बज़्मे जाम से।
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मुकाम से।

जहां सबका स्वीकार है। जैसे भगवान वेद कहते हैं, 'आनो भद्रा क्रतवो...' मुझे दशों दिशाओं से शुभ विचार आओ। मैं सबको कुबूल करूं, सबका स्वीकार करूं। भायप; भाईचारा; एक-दूसरे के प्रति मैत्री, जो पतंजलि का शब्द है। किसी की उपेक्षा नहीं। यह सबबिधि साधु का लक्षण है। जहां भी देखो, साधु समझना। लेकिन बहुत महत्त्व का आगे का लक्षण, भक्ति हो, भजन हो। भजन के बिना सब गुण ऐसे माने गए 'रामायण' में कि नमक के बिना सब व्यंजन जैसे फ़ीके लगते हैं ऐसे भजन के बिना सब फ़ीका लगता है। भजन मुख्य है। भजन की बहुत जरूरत है।

भजन मानी कोई परम को लक्ष्य में रखकर साधी गई कोई भी कला भजन में परिवर्तित हो सकती है। मीरां का नर्तन भजन हो गया। नर्तन एक कला है साहब, नृत्य! हमारे नीतिनभाई, जो हर कथा का सार निकालकर नौ दिन की कथा को लेकर संपादन करते हैं उसकी पूरी टीम, उसका जो वृंद है, सब आहुति देते हैं। उसमें आज जिस किताब लोकार्पित हुई वो 'मानस-नृत्य' है, जो पूना में गाई गई कथा है। मीरां नृत्य करती है। ओशो ने भी नृत्य करता धर्म हो ऐसा वक्तव्य दिया। कोई भी कला समाज को देते-देते सबको बांटते-बांटते परम की और गति करे तब वो भजन बन जाती है ऐसा मेरा स्पष्ट मंतव्य है। मीरां का नृत्य भजन बन गया। 'मर्दाना छेड़', गुरु नानकदेव गाते थे। उसकी गाने की कला लोगों को धन्य करते-करते परम की ओर गई तो भजन बन गई। कबीर की रचनाएं, कबीर का साहित्य, आध्यात्मिक साहित्य लोगों में पास होते-होते परम की और गया यह सब शब्द कबीर के भजन हो गए। भाई-बहन, भजन का अर्थ कोई सीमित न कर लिया जाए कि कोई व्यासपीठ पर बैठे भजन गाए, चौपाई गाए, कथा गाए। यह तो भजन है ही, अवश्य है। आप सुनते हो

वो भी भजन है निःशंक। लेकिन भजन को संकीर्ण न कर दिया जाए। उसका फ़लक बहुत बड़ा है। कोई अच्छा वाद्य बजाए, मेरी दृष्टि में भजन है। कोई अच्छा लोकसंगीत परोसे और लोगों को संस्कार की याद दिलाए और परम की ओर यात्रा करे तो यह भजन है। मेरी व्यासपीठ का एक छोटा-सा वक्तव्य कायम है। मुझे कोई पूछे कि भजन की एक बिलकुल छोटी-सी व्याख्या कर दो तो मैं इतना ही कहूं, भरोसा ही भजन है। भरोसा न हो तो क्या? काचबा-काचबी के भजन में आखिरी पंक्ति में भोजा भगत ने कह दिया-

भोजल के भरोसो जेने त्रिकमजी तारसे तेने...

भरोसा ही भजन है। 'बिनु बिस्वास भगति नहीं।' साधु भरोसे पर ही जीता है। साधु कौन? प्रत्येक पर भरोसा करे वो सबबिधि साधु। व्यवहार तो सिखाएगा, अच्छे पर भरोसा करो, बुरे पर भरोसा न करो। लेकिन साधु को कोई बुरा दिखता ही नहीं! भेद करे कैसे? सब पर भरोसा। और भलाई, मानवता, भलमनसाई। यह आठ लक्षण जिसमें दिखे उसको माँ कौशल्या एक साधु के रूप में पेश कर देती है।

तात भरत तुम सब बिधि साधु।
राम चरन अनुराग अगाधु।।

जिसको रामचरण में अगाध अनुराग हो। यह तीरथराज द्वारा प्राप्त प्रमाणपत्र है कि भरतजी, आप सब प्रकार से साधु है क्योंकि आपका रामचरण में अगाध अनुराग है। जिसको कोई नाप न सके इतना गहरा अनुराग है। समाज का चारों आश्रम जिसको प्रमाणित करे वो सब बिधि साधु।

प्रमुदित तीरथराज निवासी।
बैखानस बटु गृही उदासी।।

तीरथराज प्रयाग में जब भरतजी आए तो गोस्वामीजी को लिखना पड़ा कि तीरथराज के सभी लोग प्रमुदित है, प्रसन्न है। गृहस्थाश्रमी भरतजी को देखते हैं तो भरत का जयजयकार करते हैं कि ऐसा गृहस्थ साधु मैंने देखा नहीं! ब्रह्मचारी भी जयजयकार करते हैं। नगरवासी होते हुए भी जो वन की ओर प्रस्थान कर रहा है। वन में राम को खोजने निकला है ऐसा साधु तो देखा नहीं! वानप्रस्थी भी जयजयकार करने लगे। और यह संसारी होते हुए भी बड़े-बड़े संन्यासियों से भी उपर उठ गया उसकी सराहना संन्यासी भी करने लगे! समाज का चारों वर्ण, चारों आश्रम जिसकी सराहना करे। गृहस्थ देखते हैं तो भरत में एक पावन गृहस्थाश्रम दिखता है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य दिखा, वानप्रस्थी को वानप्रस्थी दिखा और संन्यासियों को संन्यासी दिखा। स्वयं गुरुदेव ने भी मौके-मौके पर भरजी की सराहना कर दी है। जब कोई गुरु अपने आश्रित को प्रमाणित करे तब भी उसमें सब बिधि साधु के लक्षण उसमें पहचान में आते हैं, समझ में आते हैं।

एक ओर प्रश्न है, 'बापू, कृष्ण प्रेम है और उन्होंने रास किया।' यस। 'शिव करुणा है, उन्होंने तांडव नृत्य किया। दोनों ने नृत्य किया। करुणा ने भी नृत्य किया, प्रेम ने भी नृत्य किया। राम सत्य है तो क्या सत्य भी नृत्य करता है?' सत्य बोलनेवाले की जीभ नर्तन करती है साहब! जो सत्य बोलता है उसका पैर नृत्य नहीं करता, उसकी जुबान नृत्य करती है। और बोले सो निहाल! इस जुबान से जो भी शब्द निकलते हैं, सामनेवाला निहाल हो जाता है। तो सत्य का नृत्य दिखता नहीं। सत्यवादी की सोच नर्तन करती है। सत्यवादी के विचार नर्तन करते हैं। और यह तो राम और सीता की विहारस्थली है साहब! 'गीतावली' से कुछ पद पढ़ लीजिए; 'विनय' से भी पढ़ लीजिए साहब! थोड़ा 'कवितावली' से आधार लीजिए साहब! तो राम-सीता ने जो यहां विहार किया है, गजब का विहार है! सत्य भी नर्तन करता है। और सत्य नर्तन करता है इतना नहीं, सत्य तो नर्तन करता दिखता नहीं लेकिन सत्य जिसमें होता है उनके अगल-बगल में सारा संसार नर्तन करने लगता है, पूरी दुनिया नर्तन करने लगती है।

एक सत्यवादी हमारे काल का आदमी। उसके सत्य के सामने पूरे जगत ने नर्तन किया। विश्व संस्था 'यूनो' ने दो अक्टूबर को 'विश्व अहिंसा दिन' के रूप में स्थापित किया। सत्य नचाता है। भगवान राम सत्य है। उसका आंतरिक नृत्य। और यहां तो बहुत प्रत्यक्ष भी विहार का वर्णन गोस्वामीजी ने किया है। लेकिन बचपन में राम अयोध्या में, मणि जडित आंगन था दशरथजी का। वहां छोटे राम अपना प्रतिबिंब देखकर नृत्य करते थे, ऐसा गोस्वामी ने स्पष्ट किया। फिर तो मर्यादा की नगरी है, वहां स्पष्ट रूप में नर्तन नहीं। लेकिन यह प्रेमभूमि में, चित्रकूट में आए तो भगवान राम यहां नर्तन करते हैं। सत्य नर्तन करता है और पूरी दुनिया को नर्तन करवाता है। मैं आपको एक प्रश्न पूछूं, सूर्य सत्य है या झूठा है? सत्य है ना सूरज?

इसलिए हम पृथ्वीवाले कहते हैं, सूर्य जैसा सत्य। मतलब न मिटनेवाला, न बूझनेवाला, न बदलनेवाला। हमारा जो सौरमंडल है उसका जो सूर्य है वो सत्य है। तो उनकी अगल-बगल में कितना ग्रहमंडल घूमता है! नृत्य करता रहता है! तो सत्य एक ऐसा नर्तक है जो सबको नचा देता है। राम सत्य है इसलिए उसका नर्तन है। कृष्ण प्रेम है इसलिए उसकी रासलीला है। शिव करुणा है इसलिए उसका तांडव है। तांडव तो फ़ेमस हो गया, बाकी उसका तो लास्य नृत्य भी बहुत है। सब नृत्य कला में वो निपुण है। उससे ही सब कलाएं निकली है एक अर्थ में। एक भाई ने पूछा है कि-

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं ।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ।।

'मानस' की एक चौपाई है। भगवान के वचन है कि जीव जब मेरे सन्मुख हो जाता है तो कोटि-कोटि जन्म के अघ-पाप नष्ट हो जाते हैं। लेकिन बहुत प्यारा प्रश्न पूछा कि सन्मुख कैसे हुआ जाए? बहुत छोटा-सा जवाब। किसीसे भी विमुख बनना बंद करो, तुम हरि के सन्मुख हो। ओर कोई लंबी-चौड़ी शास्त्र की चर्चा नहीं। किसीके भी विमुख होना बंद हो जाओ। पति पत्नी से विमुख न रहे। बाप बेटे से विमुख न रहे। बेटा बाप से विमुख न रहे। भाई-भाई विमुख न रहे। समाज-समाज एक-दूसरे से विमुख न रहे। सबके सन्मुख रहना सीख जाओ बस। 'अजात शत्रु किसको कहते हैं?' संसार में उसका कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ है ऐसा नहीं, शत्रु तो होते ही है दुनिया में लेकिन जिस व्यक्ति में शत्रुता पैदा नहीं हुई दुनिया में उसको कहते हैं अजात शत्रु। मीरां अजातशत्रु थी। क्या उसके दुश्मन नहीं थे दुनिया में? समाज में तो दुश्मन होंगे ही। परिवार के लोग भी बैरी बन गए। विभीषण के मन में किसीके लिए दुर्भाव नहीं था लेकिन रावण वैरी के रूप में प्रगट हो गया। महान वो है जिसके मन में किसीके प्रति विमुख भाव नहीं।

'सत्य, प्रेम, करुणा इन तीनों में से कोई एक ही हमारे पास हो तो क्या काम चलता?' एक होगा तो दूसरे दो आएंगे ही। सत्य की छाया है प्रेम और प्रेम की परिछाया है करुणा। यह अकेला नहीं है। यह टीपोई है। यह तीन कौने हैं अध्यात्म के सत्य, प्रेम, करुणा। यदि हमारे में प्रेम है तो प्रेम कभी न कभी सत्य को निमंत्रित करेगा कि मेरा प्रेम कभी झूठ न हो जाए। मेरा प्रेम सच्चा रहे। ऐसी एक ख्वाहिश पैदा होगी। और जहां प्रेम होगा वहां घातक वृत्ति नहीं होगी, करुणा ही होगी। केवल करुणा हो वहां सत्य आएगा। एक पकड़ लो तो दो आ ही जाएगा। सत्य पकड़ो, प्रेम, करुणा पकड़ में। प्रेम पकड़ो सत्य, करुणा पकड़ में। करुणा पकड़ो सत्य, प्रेम आ ही जाएगा।

'बापू, आपने एक बार कह दिया, मेरी व्यासपीठ के उत्तराधिकारी हनुमानजी है।' बिलकुल हां, मैं उत्तराधिकारी हनुमानजी को ही मानता हूं। मेरी व्यासपीठ का कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा। मेरे बाद हनुमान संभाले व्यासपीठ। उनको जिसको बिठाना है बिठाए, जो करना हो करे। विनोबाजी से प्रेरणा लेकर मैंने यह वाक्य कहा है। मैं जहां से प्रेरणा लेता हूं उसका नाम छुपाता नहीं। बहुत प्रेरणा के स्रोत हैं मेरे जीवन में साहब! मैं बोल ही देता हूं। कई लोग है जो मेरी व्यासपीठ से भी प्रेरणा लेते हैं लेकिन कभी बोलते नहीं! क्योंकि मार्कस कम हो जाए! उसको चिंता है! मेरे जैसी व्यासपीठ बनवाएंगे! मेरे जैसी चादर रखेंगे! मेरे जैसे तकिये रखेंगे! मेरे जैसा ऐसा कुछ लिखवाएंगे! सब कुछ मेरे जैसा! लेकिन नाम देना नहीं! क्योंकि इतनी आरपारता तो हरि की कृपा हो तब ही होती है। जिसको ट्रान्सपरन्सी कहते हैं, वो नहीं आती! यह 'रामचरित मानस' की परिक्रमा यह मेरी मौलिक बात है। इससे पहले व्यासपीठ की परिक्रमा आपने पुराने बुझुर्गों को सुना हो तो किसी ने की हो तो मैं दंडवत् करता हूं। लेकिन जब से मेरे दादाजी ने कहा कि बेटा, जब व्यासपीठ पर बैठना तो यह याद रखना कि परिक्रमा का अर्थ शास्त्र को सभी दिशा से देख लेना। केवल अपना ही आग्रह मत रखना। फिर यह अच्छी बात सब ने ग्रहण कर ली उसका मुझे आनंद है लेकिन कुबूल नहीं कर सकते! उसके लिए हिंमत चाहिए! उसके लिए बड़ा साहस चाहिए! ऐसी कई बातें है! दो टाईम से एक समय कथा कर देना यह मेरा खुद का निर्णय है। स्वतंत्र यानी प्रभु की प्रेरणा से लिया गया निर्णय। संगीत में कथा कहना वो भी किसी की देखादेखी नहीं है, यह हमारा निर्णय है, थोड़ा गा कर सुनाए। पहले तो एक हार्मोनियम और तबला ही था। लेकिन यह किसी की देखादेखी हमने नहीं की। फिर सब ने की! कबूलात नहीं की! साहस चाहिए। तो उसमें तो क्या करे? अच्छी वस्तु का अनुसरण अच्छा है। मैं कभी भूल जाउं तो बात और है साहब, बाकी मैं किसी की एक पंक्ति गाउं तो उसका नाम दे देता हूं। क्योंकि कर्जे से मुक्त हो जाए। किसी का कम्पोझिशन हो, किसी की एक बात हो, किसी का एक सूत्र हो तो बोलना चाहिए। हमारे नाम क्यों चढाएं?

हमारे एक बहुत बड़े अच्छे बुजुर्ग, अब तो नहीं रहे, कथाकार; मेरे से पूछने आए थे, मुझे कथा कहनी है, मुझे प्रेरणा दो। मैंने प्रणाम किया, दादा, आप कितने उम्रलायक है? मैं आपको क्या प्रेरणा दूं। हां, आपने कथा शुरू नहीं की है। मैं सालों से गा रहा हूं यह बात ओर है। और यदि आपको कथा कहनी है, कोई विशेष कथा कहनी है तो आप एक-दो कथा में आईए। आप देखिए और इनमें से कितना लेने जैसा है, आप लीजिए। तो वो एक दिन आए। फिर 'मेरी तबियत ठीक नहीं है।' ऐसा कहकर वो चले गए, क्योंकि वो सह नहीं सके! जिंदगी में कभी नहीं बोले कि मैंने यहां से प्रेरणा ली! कोई पूछने जाता था कि आपको कथा की प्रेरणा कहां से मिली? तो गुस्सा करते थे! यह प्रश्न मुझे मत पूछना! क्योंकि यह प्रश्न के उत्तर में 'मोरारिबापू' उसको कहना पड़े! वो तो कैसे कहा जाए! कुछ बातें जहां से ली हो वहां की कहनी चाहिए साहब! इसमें हम कहां छोटे हो जाते हैं साहब! लेकिन कथा वाचक हो जाना एक वस्तु है और कथा पाचक होना दूसरी बस्तु है। कथा पढ़ी जाए उसकी भी महिमा है। पढ़ना भी कोई सामान्य वस्तु है? कथा का वाचन कोई सामान्य वस्तु है साहब? कंधे पर कभी शाल रखना मेरा स्वतंत्र निर्णय है। किसी की नकल नहीं है साहब!

'बापू, चालीस-पचास वर्ष से कथा कहते-कहते आप पूर्ण रूप से सुधर गए हैं कि अभी कुछ बाकी है?' ए प्यारो! आदमियों को कुछ कमजोरियों के साथ कुबूल करना सीख लो। यहां पूर्ण केवल परमात्मा होता है। कमजोरी किसमें नहीं होती साहब! पूर्ण होने का दावा कौन कर सकता है? सब बिधि साधु के लक्षण जो मैंने बताए वो जिसमें देखो उसको वैसा मान लो अथवा तो आंतर दर्शन में देखे कि भगवद् कृपा से मेरे में यह है, तो कृपया वो उद्घोषणा न करे। क्योंकि यह प्रदर्शन नहीं है, आंतर दर्शन है। बाकी दीक्षित दनकौरी की बहुत प्यारी गझल है, उसके कुछ शे'र मैं आपको कहूं।

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

हे परमात्मा, या तो मेरी समस्त खामियों के साथ मुझे कुबूल कर ले या तो मुझे अकेला छोड़ दे। निर्णय तेरे पर। और बहुत प्यारा शे'र-

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

आदमी आदमी है। मध्यकालीन जो संतयुग माना गया उस समय के सभी संतों ने कमियां न होते हुए भी अपने जीवन कि कमियों को समाज के सामने दस्तावेज करके रख दिया। तो यहां कौन दावा कर सकते हैं कि हम सुधर चुके हैं? खुद को पूछना चाहिए कि हम कहां पहुंचे हैं? दुनिया तो वाह-वाह करे अथवा तो आलोचना करे। रागी लोग वाह-वाह करेंगे, द्वेषी लोग गालियां देंगे। सही बात तो यह है कि आदमी का मूल्यांकन होना चाहिए, हंस वृत्ति से, हंस न्याय से। कौन पूर्ण होता है? तुलसीदासजी कहते हैं, 'धीक धरम ध्वज धंधक धोरी।' तुलसी कहते हैं, मैं कैसा हूं और कहां से कहां पहुंचा हूं! सूर आदि सभी संतों ने कहा, 'हमारे हरि अवगुन चित्त न धरो', 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' 'तू दयाल दीन हो तू दानी हौ भिखारी, हो प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।' कुछ आपके प्रश्न थे। मेरे भाई-बहन, आईए, आज की कथा को विराम दूं उसके पूर्व एक-दो मिनट के लिए भगवन् नाम का आश्रय।

भरत तो निष्काम महापुरुष है। और मेरी व्यासपीठ कह रही है भरत का कामदर्शन! हां, भरत का अपना कामदर्शन है। लेकिन विरोधाभास बहुत मिलेगा। वो काम का अनादर करते हैं, नहीं चाहते हैं। और रति को जनम-जनम चाहते हैं। इस भरत को समझना बहुत मुश्किल है। अंधेरे को और उजाले को एक साथ समझना बड़ा मुश्किल है। संयोग और वियोग को एक साथ महसूस करना यह बहुत कठिन काम है, जो श्री भरतजी में दिखता है। भरतजी ने जनम-जनम रति मांगी लेकिन काम को ठुकराया। लेकिन उसका संकल्प बड़ा प्यारा सिद्ध हुआ कि यदि मुझे काम का दर्शन करना है तो मैं आम को अतिक्रमण करके मैं राम में दर्शन करूंगा।

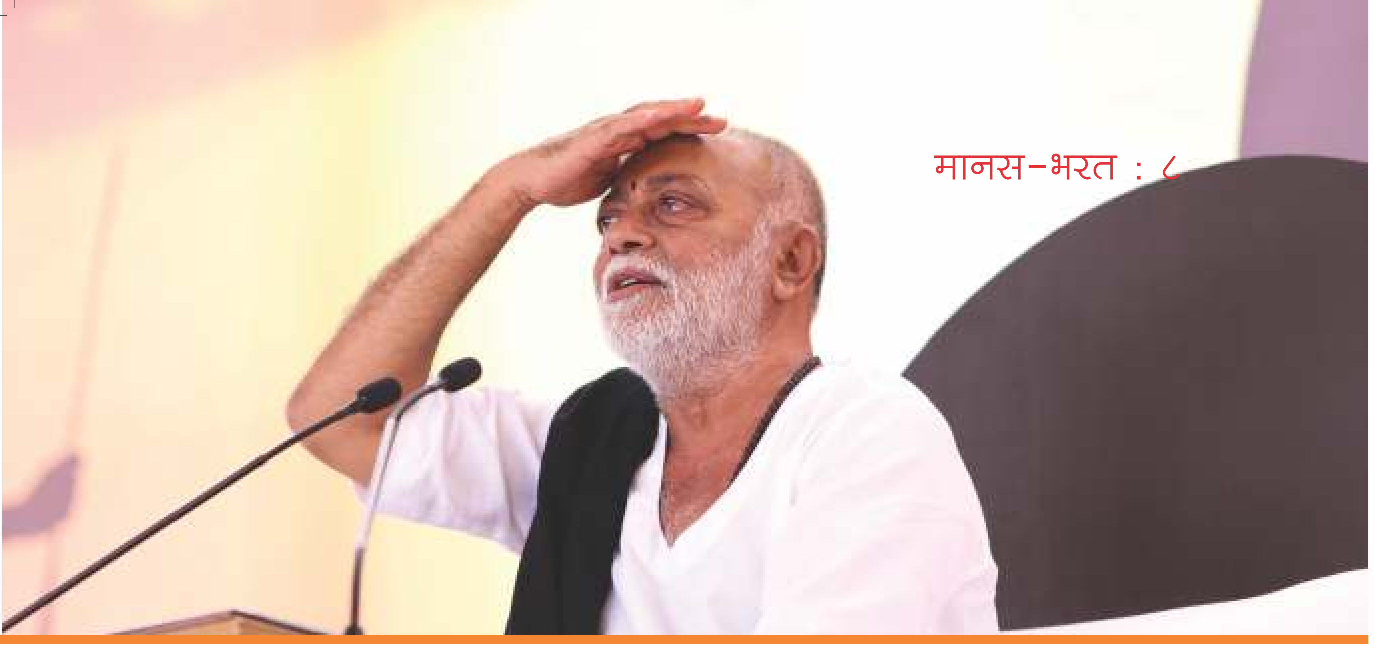

भरत की दृष्टि से पद नहीं, पादुका ही सत्य है

इस बार की चित्रकूट की नव दिवसीय कथा के केन्द्र में भरतजी को रखकर हम उसका दर्शन कर रहे हैं। भरत चरित्र अगाध है। भरत-प्रेम अगाध है। भरत का सब कुछ अगाध है। जिसके बारे में 'रामचरित मानस' में कहा कि भगवान राम उसके प्रेम के बारे में जान सकते हैं लेकिन वर्णन नहीं कर सकते, ऐसा प्रेम श्री भरतजी का है। जिसकी हम कुछ चर्चा कर रहे हैं। कल एक थोड़ी चर्चा रही कि माँ कौशल्याजी के पास भगवान राम ने कहा कि मेरे पितानी जे मुझे वन का राज्य दिया है। और माँ, हमारा राज्य केवल अयोध्या तक ही तो सीमित नहीं है। बहुत बड़ा साम्राज्य है हमारा और मुझे वन का राज्य मिला है। बाप! वनवास पाकर भगवान राम के मन में सबसे बड़ा कार्य क्या है? प्रभु ने जो प्रतिज्ञा की है कृष्णकाल में कि 'संभवामि युगे युगे।' वो तो उसका काम है ही कि आसुरी वृत्ति का नाश हो, धर्म का फिर से स्थापन हो। साधु-संतों का फिर से संरक्षण हो। भगवान इस कार्य को संपन्न करने के लिए कई अवतार लेकर आते हैं। लेकिन यहां 'रामचरित मानस' का ऐसा दर्शन है कि प्रभु का कौन-सा ऐसा बड़ा काम होनेवाला है? भगवान का क्या हेतु है कि वन में आने से यह सिद्ध होगा? तब करीब-करीब संत लोग इसमें सम्मत है। भगवान का बड़ा कार्य तो यह है कि वन में आने के कारण इस विश्व को प्रेम का अमृत प्राप्त हो। राम वन में न आते तो दुनिया को प्रेम नहीं मिलता। यह पूरा अभियान था प्रेम का। भगवान जानते हैं कि प्रेम समुद्र में है। विद्वानों ने, सुभाषितकारों ने प्रेम अथवा अमृत कहां-कहां है उसकी बिलग-बिलग बातें कही हैं। रसिकों ने कहा है कि प्रेमरूपी अमृत महिलाओं के होठों पर है। यह शृंगाररसिकों का दर्शन है। किसी ने कहा, अमृत चंद्रमाँ में है। समुद्र में तो है ही। बताया जाता है, माँ की आंखों में है प्रेम, अमृत। ऐसा भी कहा जाता है, स्वर्ग में है जहां देवताओं ने संभालकर रखा है। कुछ सर्पों की नगरी पाताल में, सर्पों की फेंणों के नीचे सुरक्षित अमृत है। लेकिन हम जानते हैं कि अमृत की प्राप्ति हुई है समुद्र-मंथन से। प्रेमरूपी अमृत, मंथन प्रगट करके जगत में भगवान राम को प्रेमराज्य की स्थापना करनी थी। यह राम का बड़ा काम था। वैसे राम राजा बन जाते तो रामराज्य नहीं होता। रघु का राज्य बना रहता, सूर्य का राज्य बना रहता। रामराज्य बनाना था प्रभु को उसके लिए एक मंथन की जरूरत थी। भगवान ने बहुत सोचा कि प्रेमरूपी अमृत कैसे प्राप्त हो?

प्रेम अमिअ मंदर बिरह भरत पयोधि गभीर।
मथी प्रगटे सूर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर।।

प्रेमरूपी अमृत को प्राप्त करना है तो किस समुद्र से प्रेम को निकाले? वो अमृत निकला वो तो समुद्र को मथा देवताओं ने, दानवों ने और एक घडा निकला अमृत। यह अमृत ने कितनी तकरार पैदा की है वो भी हम जानते हैं। देव भागने लगे अमृत लेकर। दानवों ने उनसे छीन लिया। पहले हम पी जाएं, पहले हम पी जाएं! एक तकरार पैदा हो गई। लेकिन प्रेम अमृत को निकालने के लिए समुद्र चाहिए। मथने के लिए मथानी चाहिए समुद्र के लिए। मथनेवाले चाहिए। और देवताओं के लिए अमृत निकाला गया। प्रेम का अमृत निकालने के लिए प्रभु ने सोचा एक ही समुद्र है और उसमें ही प्रेम अमृत रहता है। इस समुद्र का नाम है 'मानस' में भरत समुद्र। भरत समुद्र है। इसमें प्रेम है यह पक्की बात है। अब इस समुद्र को मथे कैसे? भगवान ने सोचा, भरतरूपी समुद्र में प्रेमरूपी अमृत है उसको मथने के लिए 'प्रेम अमिय मंदर बिरह।' चौदह साल का वियोग। उसको मंदराचल बनाकर के वियोग से भरत को मथ दिया जाए। भरत को जो वियोग दिया गया यही मंदराचल है। जिससे भरत के हृदय को मथा जाए। अब मथनेवाला कौन? भरतरूपी दरिये में वियोगरूपी मंदराचल पर्वत रखकर उसको मथ कौन रहा है? मथने की प्रक्रिया स्वयं कृपासिंधु रघुबीर ने की है। राम स्वयं समुद्र को मथ रहे हैं दुनिया को प्रेम देने के लिए। समुद्र मंथन तो बड़ा विराट मंथन है। यहां भरत का मंथन है। भगवान राम ने भरत को मथा तो प्रभु भी श्रमित हुए। मथनेवाले का श्रम दिखता है, लेकिन जिसको मथा जाए उसकी वेदना क्या होती है वो तो जो मथा जा रहा है वो ही जाने। दहीं की क्या स्थिति होती है मथने की प्रक्रिया में वो तो दहीं जाने। और दहीं बोलता नहीं! इस मंथन की प्रक्रिया में सबसे बड़ा कष्ट हुआ होगा तो श्री भरतजी को। क्योंकि वियोग के मंदराचल से, चौदह साल के वियोग से उसको मथ डाला गया उस आदमी को।

समुद्र मंथन जब किया तब तो देवताओं के लिए किया। यहां प्रेम पाने के लिए जो मंथन किया गया वो देवताओं के लिए नहीं। इसके दो अर्थ भी कई लोग करते हैं कि देवताओं के लिए और साधु के लिए यह अमृत, यह प्रेम निकाला। लेकिन मुझे लगता है, प्रेमरूपी अमृत में देवताओं को ज्यादा रुचि नहीं है। साधुरूपी देवताओं के लिए अमृत निकाला गया। भगवान का बड़ा कार्य यह था कि भरत को मैं वियोग दूं। वियोग के कारण भरत मथ जाएगा। मथने के कारण उसके हृदय में पड़ा प्रेम अमृत बाहर आएगा। यह प्रेम साधुओं को कृतकृत्य कर देगा। साधुजन इस प्रेम को फिर बाटेंगे तो जगत में फिर प्रेमराज्य की स्थापना होगी। वो अमृत निकला उसमें तो मारामारी हुई! इसके पास से यह खींच रहा है, इसके पास से यह खींच रहा है! प्रेम अमृत में यह नहीं होता।

तो मेरे भाई-बहन, इस कथा में मैं आपको कह रहा था कि भरत का धर्मदर्शन, भरतजी के जीवन का अर्थदर्शन, सार्थक दर्शन। कल थोड़ी चर्चा की भरत का कामदर्शन। भरत के काम के बारे में क्या विचार है कि वो काम छोड़ते हैं, रति को स्वीकारते हैं। एक बिलग ढंग का चुनाव है भरत के जीवन में। यह बिलक्षण मांग है महापुरुष की। और भरत का मोक्षदर्शन। भक्ति में तो मोक्ष की कोई अपेक्षा ही रहती नहीं। 'मानस' में तो लिखा है, 'राम भजत सोई मुक्ति गोसाई।' निर्वाणपद का भरतजी ने इन्कार किया कि मुझे निर्वाण नहीं चाहिए। मुझे जनम-जनम राम पद रति चाहिए। हम सबको निकट पड़े ऐसी मांग है। मैं व्यक्तिगत रूप में समझ ही नहीं सकता हूं कि मोक्ष क्या है? मुक्ति मिलने के बाद करे क्या? हां, जो मुक्ति प्राप्त करते हैं, जिसको मिल गई है वो हमारे सब प्रणम्य है। लेकिन आपको ऐसा नहीं लगता कि धरती पर बार-बार आना चाहिए? जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए, 'न मोक्षस्याकांक्षा...' हे माँ, मुझे मोक्ष नहीं चाहिए, मुझे भोग नहीं चाहिए, मुझे बार-बार जनम चाहिए कि मैं मेरी माँ को पुकारता रहूं। भरत का दर्शन मोक्षवादी नहीं है। भरत कहते हैं, भजन करो वो सबसे बड़ा मोक्ष है।

भरत का सत्यदर्शन। मेरी समझ में भरत का एक ही सत्यदर्शन कि व्यक्ति के पास सत्ता नहीं, सत् होना चाहिए। जिसके पास सत् है उसको सत्ता की जरूरत नहीं। सत्ता उसके पास दौड़ती आएगी। दूसरे अर्थ में भरत का सत्य दर्शन है, पद नहीं, पादुका। पादुका सत्य है, पद सत्य नहीं। सत् सत्य है, सत्ता सत्य नहीं। तो पादुका जो भरतजी को प्राप्त हुई यह उनका सत्य है। यह मुद्रिका कहां से आई और पादुका कहां से आई, उस पर महात्मालोग बहुत चर्चा करते हैं! एक संत तो कहते हैं कि राज्याभिषेक की सामग्री जब भगवान राम को बन में ही राजतिलक कर दिया जाएगा इसलिए सब सामग्री साथ में ली थी अयोध्यावासियों ने। यह भाव मुझे अच्छा लगता है कि किसी भी राजा का राज्यतिलक होता है तो हमारे देश में

उस राजा को पादुका भी दी जाती है। यह संकेत है। कुछ काल आप राज करो फिर यह पादुका पहन कर चौथी अवस्था में बन में चले जाना। यह पक्ष भारत का अच्छा है।

सरकारें भी जो गठित होती है उसमें भी ऐसा होना चाहिए कि सौगंधविधि हो जाए उसके बाद एक-एक पादुका उनको देनी चाहिए। यह मैं विनोद के लिए नहीं कह रहा हूं। एक विचार प्रस्तुत कर रहा हूं। यह हिन्दुस्तान में जो घटी घटना है। इस पावन परंपरा को अनदेखा न किया जाए। काश! इसका प्रयोग करने से कुछ फायदा हो! राष्ट्रपति जैसे सांसदों को सौगंधविधि कराए तो राष्ट्रपति बोले फिर वो बोले ऐसा जो होता है। आखिर में वो साईन कर ले तब राष्ट्रपति के हाथों से एक पादुका, एक डिजाईन बनाकर रखनी चाहिए। उस सांसद को भी देनी चाहिए कि ले यह पादुका। 'रामचरित मानस' जहां से मिले वहां से ले लेना और उसके आधार पर पादुका पढ़-पढ़ के देश का संचालन करना। एक प्रयोग करने जैसी बात है। लेकिन कहेंगे, बिनसांप्रदायिकता का प्रश्न होता है! अरे, जूते भी बिनसांप्रदायिक नहीं है? जूते भी सांप्रदायिक? सोचो। लेकिन प्रयोग करने जैसा है। उस समय में राज्याभिषेक की सामग्री में पादुका भी रखी जाती थी। पादुका के दर्शन राजा को कराया जाता था कि आपको यह पहनकर चौथी अवस्था में जाना है। लेकिन पादुका किसको चाहिए? सबको तो पोर्टफोलियो चाहिए कि हमारा विभाग क्या? हमको कौन-सा पद मिले? कभी-कभी भारतीय विचारों को हम नहीं समझ पाए हैं! पादुका है भोगों के सामने त्याग का संकेत। एक ओर भोग हो, एक ओर त्याग हो। पादुका व्यक्ति को जागृत रखती है। पादुका सतत उपनिषद का एक मंत्र कहती रहती है, 'न कर्मणा न धनेन न प्रजया..' राजा के पास कितने लोग हैं इससे अमृत नहीं मिलेगा। राजा के पास कितना धन है इससे अमृत नहीं मिलेगा। राजा के पास कितना कार्य, उसका उद्योग, उसका विकास उससे ईश्वर नहीं मिलेगा, शांति नहीं मिलेगी। 'त्यागे नैके अमृतत्त्व मानसुः।' उपनिषदकार कहते हैं, त्याग से ही अमृत प्राप्त होता है।

एक संत ऐसा भी कहते हैं कि केवट ने कथौटे में भगवान के चरण के निशान जो प्राप्त कर लिए थे, देख लिया था। उसके बाद जिस कथौटे में भगवान के चरण पड़े हैं उस कथौटे में हम अब और कोई चीज नहीं कर पाएंगे। इसका उपयोग हम दूसरा नहीं करेंगे। इसलिए इस केवट ने इस लकड़ी को दो भाग में काटकर के पादुका अपने हाथों से बनाई थी। मुझे कहने दो, एक रात में बनाई थी। एक रात में यूं मध्यप्रदेश से यु.पी. में आ सकतें हैं तो पादुका न बने? एक रात में वहीं से पंडाल इधर आ गया! वहीं से किचन यहां आ गया! यह तो हमारी नजर के सामने हुआ साहब! इसे ओर गंभीरता से विचार करने पर लगेगा, कोई कर गया। क्योंकि इतने घंटों में कैसे हो सकता है? पंडाल को नुकसान हुआ, किसीको तो नुकसान न हुआ! और कथा ऐसे ही ऐसे यहां आकर बैठ गई! क्या होता? हमारे नीतिनभाई ने एक सुंदर कविता लिख दी। मुझे कल बताई। आईए, नीतिनभाई की यह कविता, जो घटना घटी उस पर बहुत प्यारी कविता है। उसको हम कोशिश करे राग तोडी में गाने की-

कोण सतत आंधीने खाळे?
कोण अहीं बाजी संभाळे?

यह कौन है? कवि प्रश्न करता है, कौन है जो सतत आए तूफ़ान को रोक देता है, परास्त कर देता है? इससे लोगों को बचा देता है? कवि के मन में विचार उठता है कि वहां आंधी आई, हो भी गया लेकिन फिर दूसरी जगह इस बाजी को संभालना, सुस्थापित करना, कथा खंड़ित न हो, ऐसे ही मौज से इस नज़ारे को पूरी दुनिया चिंता से मुक्त हो जाए, यह कौन करता है? गुजराती में है। सीधे-सरल शब्द है। लेकिन तादृश्य हकीकत पेश की गई है। उसको तो किसी ओर अच्छे राग में भी कम्पोज किया जा सकता है। लेकिन हम अपने ढंग से गा लें।

तीर अने तलवारो वच्चे,
कोण पुष्प थईने पंपाळे?

चारों ओर तलवार चलती हो, तीर-कामठे चलते हो; खबर नहीं, कौन-सी चीज किसको ज़ख्मी कर देगी, किसको खत्म कर देगी, कोई ठिकाना नहीं! मैं तो उस समय भी स्वस्थ रहा कि नहीं, नहीं, ठाकुर हमारी एक ओर विशेष कृपा का अनुभव कराने जा रहा है। बाकी यह जो आज-कल लोहे के मंडप है! कोई एक अगर गिरता साहब! और भागदौड़ मचती! लोग भागते! एक के उपर दूसरे, खबर नहीं, क्या-क्या हो सकता! तो तलवारों और तीर के बाद खबर नहीं, कौन फूल बनकर हम सबको सहलाते हैं?

ऊंडी खीणमां जाता पगने,
कोण अचानक पाछा वाळे?

हमारा पैर फिसल जाए और गहरी खाई में गिरने को तैयार हो ऐसे समय में, 'नहीं बाप! मत जाना वहां पर, गिर जाओगे!'

जीवतरने मधमीठुं करवा,
कोण छुपातुं आंबाडाळे?

जीवन को अमृतमय बनाने के लिए कौन छुपता है? वेदों ने हमारे यहां कहा, 'वयम् अमृतस्य पुत्रः।' हमारे जीवन को फिर अमृत स्वरूपा बनाने के लिए कवि कहता है, हमारे जीवन को मधुरा बनाने के लिए हमें पता न हो ऐसे कौन छुपा आंबाडाळ पर? कोई रसामृत लेकर कौन छुपा है? आखिरी बंध-

सामे चाली घर-घर जईने,
कोण अहम्नी लंका बाळे?

फ़कीर लोग क्या करते हैं? सामने से घर जाते हैं अकिंचनों के पास, उपेक्षितों के पास, वंचितों के पास। ऐसे फकीरों के लिए दो पंक्ति। श्रीलंका में हनुमानजी को ले गए। लंका का संदर्भ है यह। यद्यपि इन्द्रजित बांधकर ले गया था लेकिन जब जलाया तब तो हनुमानजी ने निर्णय किया ना कि एक घर से दूसरे घर, एक अटारी से दूसरी अटारी, सामने से गए। तो यह कौन कर रहा है? यह बड़ा प्यारा दर्शन नीतिनभाई का। यह हमारा कम्पोज़िशन है साहब! अच्छी बात है। विचार अच्छे हैं। समर्पण के बिना ऐसी रचना नहीं उठ सकती। समर्पण जरूरी है।

तो बाप! हमारी चर्चा चल रही है कि केवट ने इस कथौटे में यह पादुका के निशान बनाकर के फिर अगल-बगल की काष्ट को काटकर रात्रि में बना ली। तो एक मत यह है कि वो पादुका फिर साथ में गई यद्यपि व्रत के अनुसार ठाकुरजी ने पहनी नहीं लेकिन साथ में रही। तो वो दे दी गई होगी भरतजी को। अथवा तो राम प्रभु है। प्रभु सर्व समर्थ होते हैं, 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्।' वो कुछ भी कर सकते हैं। भृकुटि बिलास में पूरी सृष्टि निर्माण करते हैं, तो पादुका एक क्षण में बना सकते हैं। परमात्मा ने संकल्प से पादुका बनाई हो, हो सकता है। पादुका के बारे में कई प्रकार की बातें चलती है! कहां से आई, कैसे बनी, क्या हुआ? तुलसी ने तो पादुका के कितने रूप देखे हैं! यह तो एक पंक्ति के बाद पादुका का नया-नया अवतार का दर्शन कर रहे हैं। एक क्षण ऐसा लगे कि पादुका यह है। दूसरे क्षण लगे, नहीं, पादुका यह है। श्री भरतजी ने पादुका शिरोधार्य कर ली और गोस्वामीजी पादुका में कई रूपों का दर्शन करते हैं-

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।
चरण पीठ करुणानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्राण के।।

एक दर्शन तो यह हुआ, भगवान ने पादुका नहीं दी। पादुका के रूप में अयोध्या की प्राण रक्षा के लिए दो प्राण रक्षक दिए। पादुका रक्षक बन गई। मैंने संतों से सुना कि रोज रात को शृंगबेरपुर और पूरी अयोध्या में जब सो जाते थे तब पादुका जो सिंहासन पर स्थापित थीं वो रक्षक का रूप लेकर पूरी अयोध्या की सीमा में वोक करती थी, उसकी सुरक्षा करती थी। पादुका के कारण किसी की मृत्यु नहीं हुई। कोई काल प्रवेश नहीं कर सकता था। प्रजा के प्राण की रक्षा के यह दो रक्षक थे। एक दर्शन ऐसा भी है। यह पादुका एक स्वतंत्र कथा का विषय है। एक बार भगवद्कृपा से, संतों के आशीर्वाद से उस पर मैं गा चुका हूं। उस वक्त क्या गाया न मुझे पता नहीं लेकिन गा चुका हूं।

संपुट भरत सनेह रतन के।

भरत के स्नेहरूपी रत्न को संभालने के लिए मानों प्रभु ने यह संपुट दिए। लेकिन भरतजी को तो यही लगा कि यह पादुका नहीं है। मेरे साथ सीता-रामजी स्वयं लौट रहे हैं। यह बात बड़ी प्यारी है। भगवान पादुका के रूप में भरत के साथ लौटे हैं। मैं आपसे निवेदन कर रहा था, भरत का सत्यदर्शन है, मैं सत्ता का आदमी नहीं, सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं हूं, मैं पादुका का आदमी हूं। पादुका सत्य है।

भरतजी का प्रेमदर्शन। उसमें तो क्या कहना? क्योंकि भरत प्रेमपूर्ण है। भरत प्रेममूर्ति है। भगवान भरत में से प्रेम निकालने लगे। 'धरे देह जनु राम सनेहु।' भरतजी, हमको तो लगता है, राम के स्नेह ने आपका रूप धारण कर लिया है। साक्षात् स्नेह, प्रेम हो आप। सब प्रकार से साधु हो। मैं कल सब बिधि साधु की चर्चा करता था तो आज एक युवक ने पूछा है, बापू, यह आपने जितने लक्षण बताएं

वो जरा ज्यादा है। साधु के कुछ कम लक्षण बता दो तो पहचान सरल हो जाए। मैंने गत कथा में शायद साधु के पंचमुख कहे थे। साधु पंचमुखी होता है।

युवान भाई-बहन, साधु को समझना है तो साधु के पंचमुख को समझ लो। साधु दसमुख नहीं होता। दसमुख तो रावण है। पंचमुख तो शंकर होता है। पंचमुख होते हैं संत के, साधु के। जिसमें यह पांच मुख हो उसको साधु समझना। एक मुख साधु का गुरुमुख। साधु सदैव गुरुमुखी होगा। कोई भी साधु को एक बहुत बड़ा आधार होगा कि मेरे सिर पर कोई अभी ताजी तरोजी बुद्धि है। आपमें अभी एकदम चेतना है उसी चेतना में किसी बुद्धपुरुष का आश्रय कर लेना। जो तुम्हारा शोषण करे वो नहीं, जो तुम्हारा पोषण करे। तुम्हें कभी डिस्टर्ब न करे लेकिन तुम्हें जब जरूरत पड़े तब सपने में आकर तुम्हारा मार्गदर्शन करे, ऐसे कोई बुद्धपुरुष का आश्रय करे। कोई जरूरी है युवानी में। तुम्हारे मन में किसीके प्रति आत्मा झुक जाए कि नहीं, यह आदमी मेरा मार्गदर्शक बन सकता है। उसमें श्रद्धा लगाकर तुम चलो। आप यह बात भी समझ लेना, आप अपने आप नहीं आते; कोई बुद्धपुरुष आपको बुलाता है। आप बहुत बीज़ी हैं। सामान्य आदमी नहीं पहुंचते हैं। साधु को कभी धनवान और सामान्य का कोई प्रश्न नहीं उठता। तो एक मुख होता है गुरुमुख।

साधु की पहचान दूसरी; दूसरा मुख होता है वेदमुख। उसके मुख से जो कुछ भी निकले, वेद उनके पीछे जाते हैं! वेद निकले मानी सत्य निकले जो काटा न जाए। साधु वेद बोले। वेद बोले मानी विद होकर बोले, जानकर बोले, समझकर बोले। यह साधु का दूसरा मुख है। साधु का तीसरा मुख है गोमुख; गाय का मुख। गाय का मुख का अर्थ, साधु की आंखें गायों की आंखों जैसी गरीब होती है। साधु गाय जैसा रांक होता है। साधु की पहचान कर लो बाप! यह पांच मुखवाला कोई मिल जाए तो हमारा और आपका इधर-उधर का भटकाव समाप्त हो जाए। गोमुख होता है साधु। साधु गाय जैसा रांक होता है। दो गाली खा ले। कोई धक्का लगाए तो हट जाए। कबीर साधु के लक्षण की उद्घोषणा करते बोले, 'दया गरीबी बंदगी...' साधु में दया बहुत होती है। साधु दयालु होता है। दयालु हो वो साधु।

> दया गरीबी बंदगी समता शील सुभाव।
> ये है लक्षण संत के कहत कबीर सुजान।

एक तो दयालुता। दूसरा गरीबी। मन का रांकपना। कोई दो शब्द कहे तो किसीको पता न लगे ऐसे आंसू गिरा दे, मुकाबला न करे-

> इरादा सामनेवाला बदल भी सकता है,
> मुकाबला ही सही पहले वार मत करना।
> \- अंदाज दहेलवी

साधु मुकाबला न करे। मैंने कल निवेदन किया था। शायद पहलीबार का मेरा निवेदन था। जगत कभी भी जीता नहीं जा सकता। जगत को कोई जीत नहीं सकता। संभावना है, व्यवस्था है, ईश्वर को जीतने की। जगत नहीं जीता जाता। छोटे-बड़े मुल्क जीत लेते हैं वो जगतविजय नहीं है। जगत के पास हारना भी भजनानंदी का विजय है। ईश्वर के पास जीतना भजनानंदी की हार है। 'हारे को हरिनाम।' जगत न जीता जाए साहब! कैसे जीतोगे? जगत को जीतना बहुत मुश्किल है। इसलिए साधु गरीब रहे। साधु का तीसरा लक्षण, जिसका भजन निरंतर चालु हो। जिसको कोई भेद न हो, सबको समभाव देता हो; शील हो।

साधु का एक मुख गुरुमुख। दूसरा मुख वेदमुख। तीसरा गोमुख। चौथा अंतर्मुख। साधु मौन रहेगा। आपको लगेगा, यह आदमी अंदर बैठा है। चौथा मुख है मेरे भाई-बहन, जो साधु अंतर्मुख है। जरूर हो उतना बहिर्मुख होकर बोले। जिसको एकान्त प्रिय हो। अकारण बोल बोल न करे। हम लोग अकारण बहुत बहिर्मुख हो गए है! दीर्घसूत्र हो गए हैं! बोलते जा रहे हैं! बोलते जा रहे हैं! जिसका कोई कारण भी नहीं होता! पांचवां मुख है सन्मुख। साधु सबके सन्मुख होता है। सबके बीच में होता है। किसीके विमुख नहीं होता। सच्चे साधु के बारे में कोई यह कह ही नहीं सकता कि यह आदमी हमसे विमुख है। साधु सबके सन्मुख होता है; किसीके लिए विमुख नहीं।

तो मेरे भाई-बहन, पांच वस्तु याद रखना, संभालना। जगत में प्रेम का अमृत देने के लिए प्रभु ने भरत को मथा। वियोग के मंदराचल से उसे मथा क्योंकि जगत को प्रेम का अमृत देना था। तो भरत का सत्यदर्शन। भरत का प्रेमदर्शन, जो प्रेम निकालना है। और सातवां बिंदु जो शायद मैंने आपसे पहले दिन कहा था वो है करुणा का

दर्शन। मैं आपसे एक बात जरूर कहूं जो कि शत प्रतिशत नहीं कह सकता। किसी भी गुरुजन को आप सत्य के बारे में न भी समझ सके। क्योंकि आप जो सोचते हो वो सत्य न भी हो। कभी-कभी उसके अंतःकरण के अखूट प्रेम को भी हम नहीं समझ पाते! इमरोझ की दो पंक्ति है, मैंने गत कथा में भी कहीं थी। इमरोझ कहते हैं, 'प्रेम समझा नहीं जाता लेकिन प्रेम सब कुछ समझ लेता है।' यह आखिरी शिखर के प्रेम की कथा है। भरतकथा यानी प्रेमकथा।

तो ऐसे भरत के हृदय में जो प्रेमरूपी अमृत है उसके लिए भगवान उसको मथ रहे हैं। साधुरूपी देवताओं के लिए प्रेमरूपी अमृत निकालना है। ऐसे भरतजी गुहराज के साथ गिरिराज चित्रकूट के नजदीक आ चुके हैं। चार वृक्ष के बीच में वटवृक्ष के नीचे सीता-राम के दर्शन कर रहे हैं। मानो कामदेव और रति मुनि के वेष में बैठे हो ऐसा दर्शन भरत कर रहे हैं। यहां मुनि मंडली के बीच में सत्संग चल रहा है। बीच में मैंने कहा, लक्ष्मणजी ने जो भरतजी का विरोध कर लिया था। भगवान राम ने लक्ष्मण को संतुष्ट किया कि भरत साधु है, उसके मन में कभी भी राजमद नहीं आ सकता। जैसे-जैसे आश्रम के निकट आए, मानो योगी को परमार्थ की प्राप्ति होने लगी हो ऐसा अनुभव भरतजी कर रहे हैं। और भरतजी दौड़ते हुए आश्रम के द्वार पर आकर गिर पडे! पाहिमाम्! शरीर लेट गया है! जैसे भरतजी डरते-डरते माँ जानकी को प्रणाम करने गये कि माँ, पापी भरत आपको प्रणाम करता है। तब जानकी ने जिस प्रेम से भरत को आदर दिया है! भरत के मन में भय था वो निकल गया क्योंकि लगा, जानकी सब रीत से मेरे अनुकूल है। अब यदि परमात्मा ने मुझे माफ़ किया तो प्रभु मुझे लेने आएंगे। इतने प्रेम से भरत आए और प्रभु को जल्दी उसको लेने के लिए जाना चाहिए लेकिन उठते नहीं! भगवान यह चाहते हैं कि भरत के बारे में लक्ष्मण ने जो दुर्भाव प्रगट किया कि मैं कैकेई के बेटे को मार डालूंगा! भगवान को लगा कि जब तक विरोध करनेवाला मुझको अनुरोध न करे कि प्रभु, अब मेरे से नहीं सहा जाता; भाई भरत रो रहा है! प्रभु, उसको लेने जाओ। मेरे भाई-बहन, यह पोईन्ट याद रखना, भरत जैसी भक्ति होगी तो हमारी हत्या करने के लिए जो तैयार हो जाएगा वो ही हमारे लिए परमात्मा को प्रार्थना करेगा कि आप उनका स्वीकार करो।

गनी दहींवाला की एक पंक्ति में यह भाव छुपा है-

> मारो हाथ झालीने लई जशे, मने शत्रुओ ज स्वजन सुधी।
> दिवसो जुदाईना जाय छे ए जशे जरूर मिलन सुधी।

मेरा विरोध करनेवाला ही मेरे लिए प्रभु से प्रार्थना करेगा कि हमारी भूल थी। यह तो सज्जन है, सरल है। 'पाहिमाम् पाहिमाम्' का पुकार हो रहा है। भगवान देर कर रहे हैं। भगवान चाहते हैं कि यदि भरत के प्रति लक्ष्मण का दिल साफ़ हो गया है और वो मुझे अनुरोध करे तो फिर मैं दौड़ुं। अब लक्ष्मणजी से नहीं रहा गया। और भगवान से कहा, प्रभु, अब मेरे से नहीं सहा जा रहा है! प्रभु, हमारा भरत प्रणाम कर रहा है। विलंब न करो। भरत आ रहे हैं, सुनते हैं भगवान राम, उठ खड़े हो गए वेदिका पर! सीधे दौड़े! गिरे हुए भरत के पास भगवान पहुंचते हैं और गिरे हुए भरत को बलात् झुककर उठा रहे हैं। भरत-राम का मिलन देखकर सब समाधि भाव में डुब गए।

> परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
> मन बुद्धि चित्त अहमिति बिसराई।।

दोनों भाई परम प्रेमपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर गए। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इसका कहीं प्रवेश न रहा। बड़ी देर तक प्रभु ने अपने भाई को हृदय से लगाए रखा। कोई बोल

> राजा का राज्यतिलक होता है तो हमारे देश में उस राजा को पादुका भी दी जाती है। यह संकेत है। कुछ काल आप राज करो फिर यह पादुका पहन कर चौथी अवस्था में बन में चले जाना। यह पक्ष भारत का अच्छा है। सरकारें भी जो गठित होती है उसमें भी ऐसा होना चाहिए कि सौगंधविधि हो जाए उसके बाद एक-एक पादुका उनको देनी चाहिए। यह मैं विनोद के लिए नहीं कह रहा हूं। एक विचार प्रस्तुत कर रहा हूं। यह हिन्दुस्तान में जो घटी घटना है। इस पावन परंपरा को अनदेखा न किया जाए। काश! इसका प्रयोग करने से कुछ फायदा हो!

नहीं पाया! सब एक-दूसरे को मिलने लगे। भगवान राम माताओं को मिलने गए तो राम का शील! क्यों यार गांव-गांव राम का मंदिर है? क्यों यार सुबह-शाम आरतियां उतरती हैं? क्यों अभी उनकी कथा गाई जाती हैं? राम का शील है। गोस्वामीजी कहते हैं, तीनों माताएं हैं लेकिन सबसे पहले भगवान राम माँ कैकेई को भेंटे हैं। सबसे पहले कैकेई को प्रणाम नहीं किया, एकदम गले लगा लिया, भेंटे। माँ के मन को प्रभु ने निर्भार किया। सभी माताओं को मिले। सीताजी सास को मिली तब जानकी का यह वल्कल वेश, सूखा शरीर देखकर सभी माताएं रो पड़ी! करुणा छा गई पृथ्वी पर! यह प्रेमभरा वातावरण देखकर कठोर दिल, संगदिल यह बेचारे कौल-किरात यह भी रोने लगे कि क्या कुल है? क्या परिवार है? सबके नेत्र डबडबा गए थे। वशिष्ठजी ने सबको संभाला।

एक नगर बस गया था चित्रकूट में। इतने में खबर मिली कि महाराज जनकजी पधार रहे हैं। पूरी जनकपुरी आ रही है। सबको अपना-अपना स्थान दिया। सभाएं होती रही। कोई निर्णय नहीं आ रहा है। आखिर में भरत का एक निवेदन कि प्रभु, आपका मन जिस प्रकार प्रसन्न हो ऐसा किया जाए। प्रेम में यह बहुत कश-मकश है। समर्पण करनेवाला चाहता है, मैं जिसको प्रेम करता हूं उसका मन कायम प्रसन्न हो। लेकिन चाहनेवाले के लिए दुविधा, असमंजस यह है कि वो निर्णय नहीं कर पाता कि वो किसमें प्रसन्न रहे? नापना मुश्किल हो जाता है प्रेम में। बड़े-बड़े भूल कर जाते हैं। इसलिए डर लगता है। मेरा पुराना सूत्र हंमेशा याद रखना कि भय से कभी प्रीत मत करना लेकिन एक बार प्रीत कर लोगे तो भय बहुत रहेगा कि कहीं दिल न दुभ जाए! जिससे प्रेम किया है उसको कहीं ठेस न लग जाय! यह जरूरी है। आखिर में भरत की पंक्ति मेरी बड़ी प्यारी पंक्ति है। भरत कहते हैं, प्रभु-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिए सोई।।

प्रभु आपका मन जिसमें प्रसन्न हो, हे करुणासागर, आप वही कीजिए। आखिर में यह निर्णय लिया जाता है कि भरत अयोध्या जाए, राम चित्रकूट रहे। चौदह साल के बाद दोनों भाई मिलकर जो निर्णय करे जगहित में वो किया जाए। भरत चित्रकूट की यात्रा करते हैं, परिकम्मा करते हैं। बिदा का समय आया। बिना आधार शांति नहीं हो रही है तब प्रभु ने कृपा कर के भरतजी को पादुका समर्पित की। भरतजी को एक विश्वास हो गया कि पादुका मेरे साथ आ रही है तो कभी न कभी पद को आना ही पड़ेगा। जहां पादुका है वहां चरण को आना ही पड़ेगा। प्रभु जरूर आएंगे। धीरे-धीरे सब बिदा होते हैं। रास्ते में निवास करते-करते दोनों समाज अवध पहुंचते हैं। और यहां चित्रकूट में भगवान की दशा!

प्रभु अयोध्या की याद करते हैं। याद में सब से पहले पूरी अवध को याद करते हैं। भरत संत की स्मृति होती थी तब भगवान के नेत्रों में प्रेमाश्रु गिरने लगते थे। फिर किसको याद करते थे? पहले माँ याद आती थी। किसको याद करते थे, नाम नहीं लिखा। केवल 'माँ' शब्द है। लेकिन मेरी अंत:करण की प्रवृत्ति कहती है राम को पहले माँ की याद आती होगी वो थी कैकेई। दूसरे स्थान पर वो सुमित्रा को याद करते। तीसरे स्थान पर माँ कौशल्या को याद करते। मानों स्मरण में माँ कौशल्या की गोद में सिर रख देते थे। पिता का स्मरण होना स्वाभाविक है। फिर परिजन उन सबको याद करते। आखिर में भरत का शील और भरत की सेवा याद कर के कृपासिंधु भगवान दु:खी हो जाते थे। अपने को रोक लेते थे। उसकी जो परिस्थिति है, वो ही जाने। ऐसे दिन बीतते हैं। लक्ष्मणजी का तो व्रत था इसलिए कुटिया को रातभर परिकम्मा करते थे। कभी-कभी प्रणाम करे कुटिया के द्वार पर तब देखते कि प्रभु सोए नहीं है! कैसे दिन गए होंगे साहब! लक्ष्मणजी की आंतर व्यथा को शायद जानकीजी जान जाती है। और जानकीजी जाग जाने के बाद लक्ष्मणजी परिकम्मा करते थोडे ढीले दिखें, 'क्या लखन भईया?' 'हां माँ।' 'स्वस्थ तो है आप?' 'लेकिन मैं पूछुं माँ, मेरे प्रभु तो स्वस्थ है? माँ, मैंने परिकम्मा कर के देखा तो ठाकुर अपनी दर्भ शैया पर चुपचाप लेटे है, सोए क्यों नहीं?' जानकी का ध्यान गया! आर्यपुत्र के पास जाकर पूछती है, 'भगवन्, आप सोए ना? ठीक तो है? आप नहीं सोते तो लखन कितना दु:खी होता है?' जब भी ऐसी घटना आती थी एक ही शब्द निकलता था, लखन, जानकी, मुझे भरत बहुत याद आता है। मेरी आत्मा भरत के लिए तडपती है, 'भरत... भरत... भरत..!' आज की कथा को यहां विराम दूं।

भरतजी कृत्य और नृत्य का समन्वित रूप है

'मानस-भरत', श्री भरतजी को केन्द्र में रखते हुए हम संवादी सूर में भरत के बारे में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे थे इन दिनों। आज उसको केवल विश्राम दिया जाएगा। हम उस बिंदु को फ़िर से स्पर्श करें। राम का प्रागट्य हुआ और फिर माँ कैकेई, माँ सुमित्रा ने भी पुत्रों को जन्म दिया। चार पुत्रों की प्राप्ति से अयोध्या का आनंद कई गुना बढ़ गया। एक महिने तक उत्सव चला। दिन ही दिन चला, रात हुई ही नहीं। शायद जीवन में राम का प्रागट्य हो जाए यानी सत्य का, भरत का प्रागट्य हो जाए मानी प्रेम का, लक्ष्मण का प्रागट्य हो जाए मानी जागृति का, सावधानी का और शत्रुघ्न का प्रागट्य हो जाए मानी अवैर वृत्ति का, तो प्रत्येक जीवन में रात कभी आती ही नहीं, दिन ही दिन रहता है। मानी उजाला ही उजाला रहता है। विवेक का, ज्ञान का प्रकाश कहो। फिर नामकरण संस्कार हुआ।

जो आनंद सिंधु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।

भगवान का नामकरण हुआ। जिसके नाम सुमिरन से विश्व का भरण-पोषण होगा, जिसके प्रेम और त्याग के कारण व्यक्ति परिपूरित होगा, ऐसे कैकेई के पुत्र का नाम भरत रखा। जिसके सुमिरन से शत्रुता का, दुश्मनी का, द्वेष का नाश हो जाएगा इसीका नाम शत्रुघ्न रखा। सकल जगत आधार, रामप्रिय, लक्ष्मणधाम, वो सुमित्रा के पुत्र का नाम रखा गया लक्ष्मण। चारों भाई कुमार हुए हैं। यज्ञोपवित संस्कार हुआ। गुरुगृह गए विद्या पढ़ने के लिए। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त की। उसके बाद विश्वामित्रजी आते हैं। राम-लक्ष्मण की मांग करते हैं। शुरुआत में तो अवधपति ममतावश मना करते हैं। लेकिन बाद में वो राम-लक्ष्मण सौंप देते हैं।

विश्वामित्र ने श्याम और गौर दोनों भाईयों को प्राप्त करके मानो महानिधि पाई। इतना ही अर्थ किया जाए कि एक गुरु को, एक सद्‌गुरु को योग्य शिष्य की प्राप्ति यह गुरु की महानिधि मानी जाती है। आदर्श माता-पिता को सुपुत्र या सुपुत्री की प्राप्ति निधि नहीं, महानिधि मानी जाती है। एक मित्र को अच्छा मित्र मिलना निधि नहीं, महानिधि है। एक अच्छे गायक को समझदार श्रावक मिल जाए, इस गायक की महानिधि है। विश्वामित्र को आज महानिधि प्राप्त हुई है। आगे जाते-जाते महाराज विश्वामित्र ने ताड़का का संकेत किया कि यह ताड़का है। उसकी संतान ही यज्ञबाधा है। भगवान राम ने अवतारकार्य का श्रीगणेश कर लिया। पहले ताड़का को मारी इसका मतलब यह है कि जहां से आसुरीवृत्तियां प्रकट होती है उस भूमिका को नष्ट कर दिया। यह राम का अवतारकार्य था। विश्वामित्र ने सोचा, जिस साधन से साध्य प्राप्त

होता है, मुझे साध्य मिल गया अब यज्ञ की क्या जरूरत? लेकिन भगवान ने कहा, बाबा, आपके लिए यज्ञ की जरूरत नहीं लेकिन दुनिया के लिए जरूरत है।

युवान भाई-बहन, 'गीता' ने बहुत सुंदर संदेश दिया है। आदमी किसी भी क्षेत्र में कितना भी सफल हो जाए लेकिन उसको तीन चीज का त्याग नहीं करना चाहिए-यज्ञ, दान, तप। बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति की बुद्धि को बार-बार शुद्ध करने का काम यज्ञ, दान और तप से होता है। अब युवानों को मैं संबोधन कर रहा हूं तो आपको किस यज्ञ की प्रेरणा दूं? आपके घर में हवन होता हो, यज्ञ होता हो यह तो बड़ी वैदिक परंपरा है; भारतीय परिचय है। लेकिन न होता हो तो जहां होता हो उसकी आलोचना किए बिना दूसरे के लिए थोड़ा आहुत होने का संकल्प करो कि मैं दूसरे के लिए जीवन में कुछ डालूंगा। एक बहुत बड़ी अस्पताल चलती हो, जो हो किसी मरीज़ को मैं दवा दे दूंगा, यह तुम्हारा यज्ञ हो जाएगा। एक भूखे आदमी को आदर देकर सन्मान के साथ मेरा अतिथि है, ऐसा समझकर रोटी खिलाना आपका यज्ञ हो जाएगा। निर्वस्त्र को वस्त्र देना आपका यज्ञ हो जाएगा। वाह-वाह थोड़ी कम करके स्वाहा-स्वाहा ज्यादा करना उसी का नाम यज्ञ है। वाह-वाह करने की मैं मना न करूं। जरूर, आप खुश रहो। आप एन्जोय करो। यह जीवन बार-बार मिलनेवाला नहीं। केवल कृत्य करना जीवन की पूर्णता नहीं है। कृत्य के साथ नृत्य भी होना चाहिए। हम लोग कृत्य में पड़े हैं! कृत्य और नृत्य का समन्वय है श्री भरतजी का जीवन। दशरथजी धर्मधुरंधर गुणनिधि ज्ञानी है। यह कर्मयोगी है। कर्म की भूमिका वहां बहुत है इसलिए अयोध्या को कर्मभूमि भी कहा गया है। लेकिन चित्रकूट को प्रेमभूमि कहा है और जहां प्रेम होता है वहां नृत्य होता है। इसलिए भरतजी में कृत्य और नृत्य का समन्वय है। युवान भाई-बहनों, कृत्य करना चाहिए और नृत्य करना चाहिए। तथाकथित धर्मो ने पाबंदी लगा दी है कि नाचना नहीं, गाना नहीं। नाचना इसका मतलब अभद्र नहीं, जो भारतीय संस्कृति को लज्जित करे ऐसी बात नहीं। सुतीक्ष्ण जैसा नृत्य तो होना चाहिए। सुतीक्ष्ण राम की प्रतीक्षा में जो नृत्य करता है, जो गीत गाता है, जो झुमता है। यह युवानों को प्रेरित करनेवाली बात है। कृत्य और नृत्य का समन्वित रूप भरत है। तो यज्ञ करना चाहिए। आप किसी को कुछ विचार दो तो भी आपने यज्ञ कर दिया। आपके पास पैसे हो तो दो लेकिन पैसा न हो तो कोई दान कर ही नहीं सकता ऐसी बात नहीं है। सबसे बड़ा दान है क्षमा का दान।

तो युवान भाई-बहन, यज्ञ बुद्धि को शुद्ध करेगा। दान बुद्धि को शुद्ध करेगा। आपकी पोकेट मनी से कोई तेजस्वी बुद्धिवालों छात्र की फ़ीस भरने का संकल्प करना यह दान है। और यह दान तुम्हारी और मेरी बुद्धि को शुद्ध करेगा। दान मानी करोडो रूपयों का दान करो, यह तो है ही। और तीसरा सूत्र तप। तप आदमी की बुद्धि को शुद्ध करता है। यह महात्मा लोग तप करे ऐसा हम तप नहीं कर पाएंगे। यह तो पंचधूनी तपेंगे; कम कपड़ो में जीएंगे; चट्टाई पर सोएंगे; कम खाएंगे; मौन रखेंगे। ऐसा तप हम संसारी नहीं कर पाएंगे। लेकिन तप मानी परिवार में थोड़ी कुछ अनबन हो जाए और तुम सच्चे हो तो भी कुछ समय के लिए चुप रहकर सह लो यह तुम्हारा तप हो जाएगा। कलियुग है, इक्कीसवीं सदी है। तप के बारे में भी पुनर्विचारणा होनी चाहिए।

यज्ञ आरंभ हुआ। असुर आए। सुबाहु को निर्वाण दिया। मारीच को शतजोजन दूर फैंक दिया। प्रभु ने विश्वामित्र के यज्ञ को पूरा किया। भगवान कुछ दिन रुके। एक दिन विश्वामित्रजी ने कहा, राघव, जनकपुर में धनुष्ययज्ञ हो रहा है। आप कहे तो जाएं। धनुष्ययज्ञ सुनते ही भगवान यात्रा का आरंभ करते हैं। रास्ते में गौतम ऋषि का आश्रम आया। महाराज विश्वामित्र से प्रभु ने जिज्ञासा की यह किसका आश्रम है? अहिल्या का पक्ष लेकर राम को निवेदन किया। यह गौतम की धर्मपत्नी है। पापवश नहीं है, शापवश है। इन्सान है, भूल कर लेते हैं, मजबूरी होती है। शाप मिल गया गौतम का इसलिए यह बिलकुल अचेतन-सी लग रही है! प्रभु चरणरज का दान करते हैं। अहल्या का उद्धार होता है। अहल्या का प्रकरण मानवजीवन के लिए बहुत उपयोगी है।

मेरे भाई-बहन, भूल नहीं करनी चाहिए लेकिन भूल हो जाए तो अहल्या की तरह पश्चात्ताप करके अहल्या की तरह चंचलता से मुक्त होकर थोड़े स्थिर हो जाओ तो पतित को पावन करने के लिए राम को आना पड़ेगा। हमें कहीं जाना नहीं पड़ेगा। भगवान वहीं से आगे बढ़े।

विदेहनगर पहुंचे। जनकराज ने स्वागत किया। 'सुंदरसदन' में निवास दिलवाया। सायंकाल को नगरदर्शन करने के लिए सबके नेत्र को सुनयन करने के लिए भगवान निकले हैं। पूरी मिथिला राम के रूप में डूब गई। हर जगह राम की ही चर्चा चल रही है। दूसरे दिन गुरु की आज्ञा लेकर भगवान पूजा के लिए पुष्प लेने के लिए जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। पुष्पवाटिका में पहली बार सियाजु और राम का मिलन होता है। एक दूसरे को समर्पित हुए। जानकीजी पुनः गौरी के मंदिर में स्तुति करती है। गौरी प्रसन्न होती है, आशीर्वाद देती है, तुझे सांवरा मिलेगा। जानकी सखियों के संग माँ के पास आई। यहां राम-लक्ष्मण पुष्प लेकर गुरु के पास आए।

धनुष्य यज्ञ का दिन आया। कोई भी धनुष्य नहीं तोड़ पाया। गजपंकजनाल की तरह भगवान के धनुषभंग किया। सीयाजु ने जयमाल पहनाई। आनंद से जनकपुर भर गया। बाबा परशुराम आए और भगवान का प्रभाव जानने के बाद स्तुति करके परशुराम महाराज भी अवकाश प्राप्त कर गए। जिसको बहुत गुस्सा आता हो वो परशुराम स्तुति कंठस्थ करे। मैं थोड़ी दवा देते-देते जाऊं। साधु निंदा नहीं करता, निदान करता है। दूतों को भेज दिया गया अवध। दशरथ महाराज बहुत बड़ी बारात लेकर जनकपुर पहुंचे हैं। ब्याह की तिथि निश्चित हुई, मागशीर्ष शुक्ल पंचमी, विवाह पंचमी गोरज का समय निश्चित हुआ। भगवान रामभद्र के दुल्हे की सवारी निकली। राम-जानकी, भरत-मांडवी, लक्ष्मण-ऊर्मिलाजी, शत्रुघ्न-श्रुतकीर्ति चारों का एक ही विवाह मंडप में विवाह हुआ। बहुत दिन बारात रुकी। स्नेह के रज्जु से मानो बारात बंध गई थी। फिर बिदा की बेला आई। बार-बार मैं कहता हूं, कन्या की बिदा चाहे हिमालय हो या जनक जैसा बिदेह हो, बाप को थोड़ा व्यथित कर ही देती है, क्योंकि कन्या की बिदा बाप के लिए जरा मुश्किल-सी लगती है। बेटी और बाप का रिश्ता और वो भी भारत की परंपरा में अद्‌भुत रहा है।

बारात अयोध्या पहुंचती है। माताओं ने आरती की। सब वेदरीति, लोकरीति संपन्न होती जा रही है। दिन बितते चले। धीरे-धीरे सब बिदा हो गए हैं। अयोध्या की समृद्धि बहुत बढ़ गई। अब विश्वामित्रजी ने बिदा मांगी। किसी साधु को, किसी भजनानंदी पुरुष को, किसी गृहस्थ के घर जाना पड़े तो जाना चाहिए, लेकिन प्रसंग पूरा हो जाए उसके बाद भजनानंदी साधु को वहां ज्यादा रहना ठीक नहीं। उसको अपनी तपस्थली की ओर लौट जाना चाहिए। विश्वामित्रजी ने हमें मार्गदर्शन दिया है। एक साधु बिदा ले रहा है। संत की बिदाई हो रही है। पूरा परिवार खड़ा है। साहब, देखिए, अकिंचन साधुता कि विश्वामित्र आए तब पैदल आए। राम-लक्ष्मण को लेकर गए तब भी पदयात्रा थी। और लौटते समय भी कोई रथ का विधान दिखाया नहीं। साधु जैसे आया वैसे ही एक राज का काम पूरा करके लौट गया। यह है भारत की साधुता। राज परिवार सजल नेत्र खड़ा है। अवधपति कहते हैं-

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

दशरथजी रघुनाथ के पिता है। लेकिन यह सम्राट आज एक त्यागी संत को कहते हैं, हे नाथ, तेरे बिना हम अनाथ है! यह संपदा सब आपकी है। हम तो केवल और केवल आपके सेवक हैं मेरी रानियों के साथ; मेरे पुत्रों के साथ, मेरी पुत्रवधूओं के साथ। मैं राजा हूं। आप से एक भीख मांगता हूं, जीव के नाते एक बात मांग रहा हूं। और सुनिए, साधु-संतों से यदि मांगने जैसी कोई बात है तो 'मानस' से सीखिए। दशरथजी ने कहा, आपको भजन करने में आपकी साधना में जब अवकाश मिले। और इस अवकाश की पलों में हमारी याद आए प्रभु, तो हमें आकर दर्शन देते रहना। क्योंकि हम तो संसारी है। चुक भी जाए! विश्वामित्र बिदा हुए।

दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड।' सुख का वर्णन है। अब अति दुःख आनेवाला है। महाराज का दर्पण दर्शन। श्वेत बाल का दर्शन। राम को युवराज पद पर नियुक्त करने का निर्णय। उसमें बाधा पड़ी। राम को युवराज बनने के बजाय चौदह साल उदासीन बनकर वन में रहने का आदेश हुआ। राम-लक्ष्मण-जानकी वन की राह पकड़ते हैं। पूरी अवध भगवान के पीछे पागलों की तरह दौड़ती हैं! भगवान ने सबको समझाया। तमसा तट पर प्रथम निवास। रात्रि के समय लोग सो चुके थे तब प्रभु सुमंत से कहकर रथ लेकर निकल गए। शृंगबेर पहुंचते हैं। स्वागत हुआ। एक रात्रिमुकाम हुआ। सुमंत को समझाया। नौका के पास गए। केवट ने चरणों का प्रक्षालन कर नौका से पार किया। प्रभु

ऊतरे। फिर वहीं से आगे यात्रा हुई। भरद्वाजऋषि के आश्रम में पधारे। वहीं से चार शिष्यों को साथ लेकर प्रभु आगे वनयात्रा करते हैं। वाल्मीकि के आश्रम पधारे। वाल्मीकि से रहने की जगह पूछ रहे हैं। चौदह अध्यात्मस्थान बताएं। फिर वाल्मीकि ने कहा कि महाराज, आप चित्रकूट पधारिए, वहां सब प्रकार से आपको ठीक लगेगा। चित्रकूट की महिमा का गायन किया। राम-लक्ष्मण-जानकी चित्रकूट आकर रहे नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं, 'चित्रकूट रघुनंदन छाए।' छा गए अणु-अणु में! भगवान ने वहां बहुत लंबे काल तक रहने का निर्णय किया है। प्रभु इस तरह यहां रहे हैं।

सुमंत रथ लेकर अवध आया। महाराज दशरथजी ने भगवान का नाम छः बार लेकर प्राणत्याग किया। अयोध्या अनाथ हुई। भरतजी को बुला लिया गया। बहुत-सी चर्चा हुई। गुरु ने शोक निवारा। पितृक्रिया हुई। भरत और सब सभा मिली। आखिर में एक निर्णय हुआ कि हम सब भगवान को मिलने के लिए चित्रकूट जाए। सबको लेकर भरतजी जाते हैं। यात्रा में लक्ष्य तो सबका चित्रकूट है, लेकिन साधन सबका बिलग-बिलग है। वरिष्ठ आदि महात्मागण रथ में बैठे हैं। माताएं पालखी में है। कोई हाथी पर बैठा है। कोई घोड़े पर बैठा है। कोई पैदल चल रहा है। जाना है सबको चित्रकूट लेकिन साधना बिलग है। हम सबको भी चित्रकूट ही जाना है। इस परमतत्त्व तक ही पहुंचना है। लेकिन हम सबके भी साधन भिन्न-भिन्न है। धार्मिक लोग ये वो रथ पर गए। वशिष्ठ आदि तो धर्मधुरंधर है, धर्मज्ञाता है, धर्म को तुलसी ने रथ कहा है। वो धर्म, कर्म के द्वारा चित्रकूट जाने की बात कर रहे हैं। हाथी पर बैठे; हाथी विवेक का प्रतीक है, गणेश विवेक का प्रतीक है यानी ज्ञानवादी हाथी पर बैठकर जा रहे हैं। घोड़े पर बैठकर जानेवाले योगी लोग है, क्योंकि उसमें बागडोर थामनी पड़ती है। चित्तवृत्ति निरोध करनी पड़ती है। यह यात्रिकों को योग मार्ग के यात्री संत लोगों ने बताये हैं। कई लोग पालखी में केवल कृपा के आधारित यात्रा कर रहे हैं। कोई पदयात्रा कर रहे हैं सब अपने-अपने ढंग से। मेरे भाई-

बहन, यात्रा अपने ढंग से ही करिए। सबकी यात्रा अपने ढंग से होनी चाहिए। देखादेखी नहीं होनी चाहिए। भरत सबको मिलते-मिलते चित्रकूट पहुंचते हैं। भगवान कृपा करके पादुका देते हैं। भरतजी पादुका लेकर लौटते हैं। पादुका का स्थापन किया। नंदिग्राम में निवास किया।

एक युवान का प्रश्न है, 'बापू, भरतजी को पादुका मिली। आपने बताया, हमें किसी की पादुका चाहिए। तो पादुका के लिए लायकात कौन-सी चाहिए?' पांच वस्तु त्यागने की तैयारी हो उसके पास पादुका साक्षात् बनकर रहती है। यह पांच छोड़ने की लायकात न हो तब तक पादुका तो पादुका का काम करेगी लेकिन पांच बस्तु छोड़नी आवश्यक है। मेरे भाई-बहन, किसी भी भाव से किसी की पादुका बलात् नहीं, देखा-देखी में नहीं, अथवा तो मौका आए मांगो भी मत। कोई सामने से दे-दे तब समझो आज घर में रामजनम हो गया। आज घर में भरत-मिलाप हो गया।

तो मेरे भाई-बहन, पांच बस्तु भरत को पादुका का अधिकारी बना देती है। यद्यपि यहां लिखा है, 'प्रभु करि कृपा ...' इसके लिए कोई साधन नहीं, कोई कृपा हो जाए। और कोई दे दे। पादुका के लिए लायकात कोई नहीं, कृपा से मिलती है। दुकानों में मिलती है, खरीद लो! कैसे भी मिल सकती है। लेकिन पांच वस्तु यदि हमसे हो तो उसका भी ध्यान तो रखो। एक, एक उम्र हो तब परिवार में सब अधिकार छोड़ने का संकल्प करो; उसको पादुका प्राप्त करने का पहला अधिकार मिलता है। मेरे घरवालों का मेरे पर अधिकार, अब मेरा किसी पर अधिकार नहीं। मैं बाप हूं, मैं पति हूं, मैं यह हूं। नहीं, नहीं, यह दुकान बंद करो। क्रमशः अधिकार कम करो। अधिकार अहंकार ला ही देता है। अधिकार में अहंकार किसी न किसी रूप में आ ही जाता है। अधिकार कम करो। दूसरा, हो सके तो भजन बढ़ाओ, अहंकार धीरे-धीरे कम करो। मैं इतना बड़ा शेठ, मैं इतना बड़ा वक्ता, मैं इतना बड़ा ज्ञानी, मैं इतना बड़ा श्रोता, मैं इतना बड़ा कुशल नेता! सब अहंकार कम करो क्रमशः धीरे-धीरे। तीसरा, अंधकार छोड़ो। अंधकार मानी अज्ञानता, मूढ़ता, विकृति। तमस, अंधकार, मूढ़ता छूटे। अंधकार छूटे। चौथा, अलंकार छूटे। एक उम्र में जाए ना, सन्मान लेना छोड़ दे। बाबूजी सत्तर साल के हो गए, अब सन्मान करो! आप लो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन तुम्हारी मानसिकता बननी चाहिए। अब क्या अलंकार लेना? अब क्या खिताब लेना? अब तो कोई साधु कहे कि अच्छा लगता है, तुम अच्छे जी रहे हो। इससे बड़ा प्रमाणपत्र क्या हो सकता है? कोई साधु कहे कि नहीं, नहीं, हरिनाम लेते ही तुम्हारी आंख भीग जाती है। तुम पाने की ओर जा रहे हो। अलंकार क्या लेना? परमात्मा ने मानवदेह दिया, इससे बड़ा क्या अलंकार? कौन अलंकार? और आखिर में अस्वीकार छोड़ना चाहिए। हर बात में अस्वीकार! ऐसा नहीं, ऐसा नहीं! हम तुम को नहीं अपनाएंगे! जाओ, यहां नहीं आओ! तुम्हारी मेहफ़िल में सबका स्वीकार हो। किसी का अस्वीकार नहीं।

यह पांच वस्तु भरत में दिखती है। भरत में अंधकार नहीं है। कुछ समय के लिए थोड़ा क्रोध कर गए। थोड़ा बोले, बाकी भरत में अंधेरा नहीं है। एक ऐसा चंद्र है भरत कि जिसको कृष्णपक्ष लागू नहीं होता। गुरु अपराध का कलंक उसमें नहीं है। यह भरतचंद्र निरंतर चांदनी फैला रहा है। न भरत को कोई अलंकार है। कोई अलंकरण नहीं है, जिसने राजपद छोड़ दिया। अधिकार छोड़ दिया। अंधकार छोड़ा। अलंकार छोड़ा। अहंकार तो है ही नहीं। अस्वीकार नहीं। माँ कैकेई को भी साथ चित्रकूट ले गए। मंथरा के प्रति भी किसी भी प्रकार की कटुता 'मानस' में दिखती नहीं है। सब का स्वीकार। तो श्री भरत का चरित्र वहां इस रूप में 'अयोध्याकांड' में पूरा होता है।

'अरण्यकांड' में प्रभु फिर चित्रकूट से यात्रा करते हैं। फिर अनसूया आश्रम। फिर भगवान पंचवटी में निवास करते हैं। पंचवटी में शूर्पणखा आती है। खर-दूषण आदि चौदह हजार का निर्वाण होता है। रावण योजना बनाकर जानकीजी का अपहरण करता है। जटायु कुरबानी दे देता है। रावण अशोकवन में जानकी को जतन करके रखता है। यहां मृगवध करके प्रभु लौटे। सीताविहीन आश्रम देखकर प्राकृत नरलीला करके भगवान रोए। जटायु को दिव्यगति देकर आगे गए। कबंध को गति दी। जानकी की खोज करते-करते शबरी के आश्रम में आए। नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा की। शबरी योगाग्नि में चली गई। प्रभु पंपासरोवर गए। वहां नारदजी मिले। कुछ चर्चाएं हुई। आखिर में संत गुणों की चर्चा पूछी। अति संक्षेप में 'अरण्यकांड' को विराम दिया।

'किष्किन्धाकांड' तो वैसे भी छोटा-सा कांड है। श्री हनुमानजी और राम का मिलन। सुग्रीव से हनुमानकृपा के द्वारा मैत्री। बालीप्राण भंग। सुग्रीव को राजापद प्राप्त हुआ। अंगद को युवराजपद दिया। उदासीन व्रत लेकर भगवान चार महिने प्रवर्षन पर्वत पर रहे। सुग्रीव प्रभु का कार्य भूल गया। लक्ष्मण को भेजकर चेतावनी दी। थोड़ा भय बताया। सुग्रीव प्रभु की शरण में आया। योजना बनी जानकी की खोज की। सभी दिशाओं में बंदरों को भेज दिए। दक्षिण में अंगद की अगवानी में हनुमान आदि मुख्य-मुख्य बंदर है। सलाहकार जामवंत आदि भी इस टुकडी में है। सुग्रीव की आज्ञा लेकर यह ग्रूप दक्षिण की ओर यात्रा करते हैं। प्रभु को लगा कि कार्य हनुमान ही करेगा। इसीलिए हनुमान को बुलाया और प्रभु ने मुद्रिका दी है। हनुमानजी रामकार्य के लिए तैयार हुए।

'सुन्दर' का आरंभ करते हुए गोस्वामीजी गा उठे -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

श्री हनुमानजी महाराज लंका में प्रवेश करते हैं रास्ते के सभी विघ्न को हटाते हुए। दोनों जगह आप देखिए साहब! भरतजी चित्रकूट गए तब विघ्न आए। लेकिन पादुका लेकर लौटे तब एक भी विघ्न नहीं है। वैसे हनुमानजी त्रिकूट गए, लंका गए तब विघ्न आए। लेकिन चुडामणि लेकर हनुमानजी लौटे, कोई विघ्न नहीं! श्री हनुमानजी माँ तक पहुंच जाते हैं। हनुमान को माँ मिली। माँ को बेटा मिला। हनुमानजी मधुर फल खाते हैं, तरु तोड़ते हैं। रक्षक लोग आए। कईयों को मारा! अक्षयकुमार को भेजा और हनुमानजी ने आते ही अक्षयकुमार का क्षय किया। सब घबरा गए कि अक्षय को मार दिया! रावण भी कुपित हुआ। इन्द्रजित आता है। दोनों का द्वंद्व युद्ध शुरू होता है। हनुमानजी पर उसने प्रहार किया। बांध करके हनुमान को लंका में ले आया। मृत्युदंड का एलान। विभीषण का प्रवेश। नीति विरोध करती है। दूत को मारा न जाए बड़े भैया लंकेश, ओर कुछ सजा आप कर सकते हैं। सब मंत्रीयों ने सर्वानुमत प्रस्ताव पास किया कि बंदरों को पूंछ पर ममता होती है तो इस बंदर की पूंछ जला दी जाए। लोगों ने आग लगाई। जैसे आग लगी एकदम फिर पूरी उलट-पुलट लंका को जलाई है। एक विभीषण का भवन रह गया, बाकी सब जले! हनुमानजी समुंदर में कूदे। हनुमानजी ने समुंदर में स्नान किया और माँ के पास आये। माँ राजी हुई। चूडामणि दिया।

हनुमानजी समुद्र नांघकर इस पार। बंदर-भालू नाचने लगे। सब हनुमानजी को गले लगाने लगे। सब रघुनाथ के पास गए। जामवंत ने हनुमान कथा राम को सुनाई। फिर प्रभु ने कहा कि अब विलंब न करे। सेना तैयार हुई। सागर के तट पर प्रभु ने डेरा डाला। यहां विभीषण चरणप्रहार प्राप्त करके भगवान के पास आ जाता है। शरणागति होती है। फिर प्रभु विभीषण से पूछते हैं कि शतजोजन समुद्र है, पार कैसे किया जाए? बोले, महाराज, आप तीन दिन अनशन करो। समुद्र यदि मार्ग दे दे तो बल का प्रयोग नहीं करना। भगवान को यह विचार अच्छा लगा। दर्भ का आसन लगाकर प्रभु तीन दिन बैठ गए। समुद्र ने माना नहीं। प्रभु ने लक्ष्मण को कहा, धनुष्य-बाण लाओ। जैसे प्रभु ने धनुष्य-बाण लिया ही, ब्राह्मण का रूप लेकर समुद्र स्वयं भगवान की शरण में आता है और प्रभु से कहता है, महाराज, मेरी जड़ता के कारण मैंने देर कर दी। आप सेतु बनाईए। भगवान को सेतु का प्रस्ताव अच्छा लगा। तुलसी ने 'सुन्दरकांड' पूरा किया।

'लंकाकांड' के आरंभ में काल का वर्णन है। सेतुबंध तैयार हुआ तो प्रभु ने कहा कि यह उत्तम धरणीं है। मेरी इच्छा है कि यहां भगवान शंकर की स्थापना करूं। सबको बात अच्छी लगी। भगवान राम के हाथों हमारी संस्कृति में, हमारे अध्यात्म में परम ज्योतिर्लिंग भगवान रामेश्वरम् का स्थापन हुआ। त्रिभुवन में जयजयकार हुआ। सुबेल पर भगवान ने डेरा डाला। सायंकाल रावण अपने अखाडे में मनोरंजन प्राप्त करने के लिए आता है। भगवान राम रावण के महारस का रसभंग कर देते हैं। दूसरे दिन सुबह संधि का प्रस्ताव लेकर राजदूत के रूप में अंगद जाता है। लेकिन बहुत चर्चा के बाद युद्ध अनिवार्य हुआ। भीषण युद्ध हुआ। लछिमन मूर्छा। कुंभकर्ण को वीरगति। इन्द्रजित को वीरगति। आखिर में रावण और रघुनायक का तुमुल युद्ध होता है। प्रभु ने इकत्तीस बाण उठाए। दस मस्तक, बीस भुजा और इकत्तीसवां बाण रावण की नाभि में लगा। जीवन में पहली बार और आखिरी बार भी ललकारता हुआ बोला, 'राम कहां है?' पडकार करता हुआ रावण धरती पर गिरता है! त्रिभुवन में प्रभु का विजय होता है। रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा जाता है। रावण का अग्निसंस्कार हुआ। विभीषण का राजतिलक हुआ।

पुष्पक विमान तैयार हुआ। श्री हनुमानजी को अवध की ओर भेज दिए गए कि भरत को खबर करो। प्रभु का विमान शृंगबेरपुर ऊतरता है। और प्रभु गुह को, केवट को कहते हैं कि नौका पार करते हुए मैं तुम्हें ऊतराई देता था तुमने मना की। बोल, क्या दूं? तब केवट की आंख भर आई कि प्रभु, यह तो बहाना था दूसरी बार आपका दर्शन करने के लिए। आपने क्या नहीं दिया? लेकिन फिर भी प्रभु, मैंने आपको नौका में बिठाया था, आप मुझे विमान में बिठाकर अयोध्या ले चलिए। परमात्मा उसको साथ में लेते हैं। यहां 'लंकाकांड' को विराम दिया।

'उत्तरकांड' का आरंभ अति करुणा भरा है। एक दिन बाकी है। जैसे कोई डूबते को जहाज मिल जाए ऐसे श्री हनुमानजी इन विरही पलों में आ गए। भरतजी को हनुमानजी ने कहा, महाराज, मैं पवन का बेटा; मेरा नाम हनुमान है। रावण को निर्वाण देकर ठाकुर जानकी, लखन अपने सखाओं सहित पधार रहे हैं। विमान अयोध्या में सरजू के तट पर ऊतरा है। प्रभु विमान से ऊतरे। जन्मभूमि को प्रणाम किया। उसी समय सब यह बंदर, भालू, असुर सब मनुष्यशरीर में नीचे ऊतरे हैं। भगवान दौड़े! भरत और राम जब भेंटे तब तो कोई निर्णय नहीं कर पाया कि कौन वनवासी था? प्रभु सबको मिल रहे हैं। उसी समय ऐश्वर्य लीला करते हैं और प्रभु ने अनेक रूप धारण किए। जिसकी जैसी भावना, ऐसा प्रभु ने सबको दर्शन दिया। सबसे पहले माँ कैकेई के पास गए। मानो जहां से उदासीन व्रत का आरंभ हुआ था, वहां ही उदासीन व्रत का पारणा हुआ है। माँ और राघव मिले। सब सुमित्रा को मिले; कौशल्या के पास आए। जानकी को देखकर माँ रो पड़ी। सबको शांत किया। जानकीजी को स्नान करवाया। प्रभु ने तीनों भाईयों की जटा खोली। खुद की जटा खोली। स्नान किया। चौदह साल के बाद राज्यारोहण के अलंकार धारण किए गए।

वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को पूछा, आज ही तिलक कर दें? ब्राह्मण देवताओं ने कहा कि अब कल का भरोसा न किया जाए। एक रात ममता की बीच में आ गई तो चौदह साल का धक्का लग गया! अब विलंब न करे। दिव्य सिंहासन मांगा। पृथ्वी को प्रणाम करते, सूर्य भगवान को प्रणाम करते, दिशाओं और दिशाओं के देवताओं को प्रणाम करते हुए, ब्राह्मण और ऋषिमुनियों को प्रणाम करते हुए, माताओं को प्रणाम करते हुए, अयोध्या की जनता को प्रणाम करते हुए, गुरुदेव को प्रणाम करते हुए आज्ञा पाकर भगवान दिव्य सिंहासन पर विराजित हुए जानकीजी सह। और त्रिभुवन को रामराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने राम के भाल में तिलक किया है -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

माताओं ने प्रभु के रामराज्य की आरती ऊतारी। जय जयकार हो रहा था। वेदों ने प्रभु की स्तुति की। उसके बाद साक्षात् महादेव कैलास से अपने मूल स्वरूप में राम दरबार में पधारे हैं। और राजाधिराज रामभद्र की भगवान ने स्तुति की। रामराज्य की स्थापना हुई। छह महिने बीत गए। सब बिदा हुए हैं। हनुमानजी पुण्यपुंज है इसलिए उसको मर्त्यलोक में लौटना न पड़ा। और फिर सुंदर रामराज्य का वर्णन है, जो हम सब चाहते हैं। विश्ववंद्य गांधीबापू की भी यही मांग रही। रामराज्य मानी सामंतशाही नहीं। रामराज्य

> केवल कृत्य करना जीवन की पूर्णता नहीं है। कृत्य के साथ नृत्य भी होना चाहिए। हम लोग कृत्य में पड़े हैं! भरतजी में कृत्य और नृत्य का समन्वय है। युवान भाई-बहन, कृत्य करना चाहिए और नृत्य करना चाहिए। तथाकथित धर्मों ने पाबंदी लगा दी है कि नाचना नहीं, गाना नहीं! नाचना इसका मतलब अभद्र नहीं, जो भारतीय संस्कृति को लज्जित करे ऐसी बात नहीं। सुतीक्ष्ण जैसा नृत्य तो होना चाहिए। सुतीक्ष्ण राम की प्रतीक्षा में जो नृत्य करता है, जो गीत गाता है, जो झुमता है। यह युवानों को प्रेरित करनेवाली बात है। कृत्य और नृत्य का समन्वित रूप भरतजी है।

का अर्थ संतों ने कहा, प्रेमराज्य। रामराज्य की स्थापना हुई। राम की यह नरलीला है। समय मर्यादा पूरी हुई तो सीताजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। एक अपवाद करनेवाले आदमी के शब्द पर जानकी को सगर्भा स्थिति में वाल्मीकि के आश्रम भेज देना यह कथा 'रामचरित मानस' में तुलसीजी नहीं लिखते हैं। तुलसी की कथा का मूलसूत्र है संवाद। यह संवाद की कथा है। यहां विवाद, अपवाद, दुर्वाद ऐसी कोई भी बात को तुलसी प्रवेश नहीं देते हैं। शायद तुलसी चाहते हैं कि सीता-राम लोकहृदय की अयोध्या में बैठे हैं अब उसको बिलग नहीं करना है। तीनों भाईयों के यहां भी दो-दो पुत्रों के जन्म हुए।

अयोध्या के वारिस का नाम लेकर रघुकुल की कथा को पूरा किया। उसके बाद 'उत्तरकांड' में आगे कागभुशुंडिजी का चरित्र है। गरुडजी भुशुंडिजी के पास कथा सुनने के लिए आते हैं। कथा श्रवण करते हैं और बाद में भुशुंडिजी अपना चरित्र कहते हैं। और आखिर में खगपति गरुड सात प्रश्न पूछते हैं, जो 'रामचरित मानस' का निचोड है, सार है सात प्रश्न। बुद्धपुरुष भुशुंडि सातों प्रश्न का उत्तर देते हैं। कैलास की ज्ञानपीठ से भगवान शंकर ने कथा को विराम दिया। गंगा, यमुना और सरस्वती के तट पर याज्ञवल्क्यजी ने विराम दिया कि नहीं, यह स्पष्ट नहीं हो रहा है क्योंकि वो कथा शायद यह तीनों नदियां बहती रहेंगी तब तक चलती रहेगी। आखिर में कलिपावनावतार गोस्वामी तुलसीदासजी अपने मन को संबोधन करते हुए कथा को विराम देते हुए तीन ही सूत्र देते हैं कि इस कलियुग में हम जैसों के लिए कोई ओर साधन नहीं। न जोग, न यज्ञ, न तप। हम क्या कर पाएंगे? लेकिन यह तीन बातें आखिर में कही। राम को स्मरो, राम को गाओ और राम को सुनो। भगवान की स्मृति बनी रहे। गाने का अवसर मिले तो गाओ राम को, 'मानस' को गाओ। कहीं भगवान की चर्चा हो रही है तो उसको श्रवण करो।

तो बाप! 'मानस' के चारों आचार्यों ने अपनी-अपनी पीठिका से कथा को विराम दिया। आज परम पावन तीर्थ भूमि चित्रकूट में इस पीठ से रामकथा को जब विराम देने की ओर हम हैं तब और क्या कहूं? नौ दिन भरतजी को केन्द्र में रखते हुए हमने भरत का दर्शन करने की कोशिश की और भरत का जीवनदर्शन क्या है उसको समझने की कोशिश की। काश! कोई बातें आप तक पहुंची हो। आपकी रुचि में यह बातें अनुकूल हुई हो। आपको लगा हो, यह बातें हमारे जीवन को विकास और विश्राम दे सकती है तो इन बातों को अपने हृदय में संजोकर रखिएगा। जीवन के किसी मोड पर आपको काम आएगी ऐसी मैं श्रद्धा रखता हूं। दूसरी बात; इतना शिस्त, इतनी आदर रामकथा के प्रति आपका होना यह कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि आप राम की विहारस्थली के लोग हैं। आपमें यह स्वाभाविक है। कथा के निमित्त तो कोई परिवार बन जाता है। वैसे मैंने दो बातें रखी, या तो पूर्वजों का पुण्य है या तो आनेवाली पीढ़ियों का पुण्य जागृत हो रहा है। इसीके कारण ऐसी कथाएं होती है। यह कथा आज विराम की ओर जा रही है तब मैं इस पूरे आयोजन से मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। भगवद्‌कृपा से आप सबने सुचारू रूप से, श्रद्धा से, औदार्य से यह आयोजन को सुंदर रूप दिया। कोई विघ्न नहीं आया कथा में यह बहुत बड़ी प्रभु की कृपा है। यह कोई विघ्न नहीं था। यह तो प्रभु की विशेष कृपा की अनुभूति थी। यह कोई विघ्न विघ्न नहीं था! मैंने जब मध्यप्रदेश से आकर यु.पी. में कथा शुरू की थी तब भी कहा था कि पंडाल तो टूटे लेकिन किसी का विश्वास नहीं टूटा। यह जबरदस्त सफलता है। प्रेम नहीं टूटा। पंडाल तो टूट सकता है। सब मिटेगा, कुछ नहीं रहेगा। रहेगा तो प्रभु का नाम रहेगा; हरिनाम रहेगा।

तो मेरे भाई-बहन, निर्विघ्न, बिलकुल किसी अप्रिय घटना के बिना यह कथा आज संपन्नता की ओर जा रही है तब छोटी-सी छोटी व्यक्ति से लेकर प्रशासन तक, बिलग-बिलग स्थानों में जिन लोगों ने सेवा समर्पित की है; कथा भी नहीं सुन पाते होंगे फिर भी कथा को छोड़कर सबकी सेवा में लगे! अपनी-अपनी आहुति जिन्होंने डाली है इन सबके प्रति मेरी प्रसन्नता है, मेरी शुभकामना है कि बाप! खुश रहो! खुश रहो! खुश रहो! भगवान की कृपा से सब संपन्न हुआ। और यह नव दिवसीय रामकथा 'मानस-भरत', यह प्रेमयज्ञ का जो सुकृत है; आईए, हम सब मिलकर नव दिवसीय इस रामकथा को भगवान कामतानाथ के चरणों में समर्पित करें, हे भगवन्, हमारे अर्घ्य को आप कुबूल करे। और आपकी प्रसन्नता से हम यह सब कर पाए। पूरी दुनिया पर आपकी प्रसन्नता बनी रहे।

मानस-मुशायरा

आप चाहे तो मेरे हाथों की तलाशी ले ले।
मेरे हाथों में लकीरों के सिवा कुछ भी नहीं।

•

ज़िन्दगी तूने लहु लेके मुझे दिया कुछ भी नहीं,
तेरे दामन में क्या मेरे वास्ते कुछ भी नहीं।

– राजेश रेड्डी

फले–फूले कैसे ये गूंगी महोब्बत।
न हम बोलते हैं न वो बोलते हैं।
महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।

– शरफ़ नानपारवी

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

•

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

इरादा सामनेवाला बदल भी सकता है,
मुकाबला ही सही पहले वार मत करना।

– अंदाज दहेलवी

संवाद का जन्म बोध से होता है, विरोध से नहीं

'सद्भावनापर्व-८' में मोरारिबापू का अवसरोचित उद्बोधन

'जगद्गुरु आदि शंकराचार्य सभागृह' में आयोजित 'सद्भावना पर्व' ८, इसके सभी मार्गदर्शक वडीलो, संजय आदि युवान भाई-बहनों, हमारे पर अहेतु हेत करके आये हुए हमारे सभी आदरणीय वरिष्ठों, आप सभी भाई-बहनों, सभी को मेरा प्रणाम। करीब-करीब प्रतिवर्ष 'कैलास गुरुकुल' में यह आयोजित होता है। जिस रूप में 'विश्वग्राम' भाई संजय और उनकी पूरी टीम और हमारे सभी बुज़ुर्ग, मार्गदर्शक साथ में मिलकर के जो काम कर रहे हैं, जो कर्म हो रहा है; जिसका जितनी मात्रा में परिणाम आता हो; वो सब संकल्प को देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। सबसे पहले मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

अब कहां से शुरू करूं? कहां तक खत्म करूं? यद्यपि मुझे समय की सीमा में बांधा नहीं गया है फिर भी साधुकुल में जन्मा हूं ना इसलिए शील का ध्यान रखना मेरा कर्तव्य है। आदमी कर्म बहुत करे और शील ना हो तो कर्मशीलता फिक्की पड़ जाती है। आदमी धार्मिक बहुत हो लेकिन शील ना हो तो धर्मशीलता कुंठित हो जाती है। आदमी विवेक की चर्चा बहुत करे लेकिन शील न हो तो विवेकशीलता पंगु हो जाती है। इसलिए मैं ध्यान रखूंगा कि बारह बजे पूरा हो। जैसे आदरणीय रतिबापा ने कहा, सद्भावना एक बहाना है। मुझे शरफ नानपारवी का एक शे'र याद आ रहा है। दिल्ली के शायर है; बड़े पक्के नमाजी है; मेरे अजीज है; उसका एक शे'र है कि-

शायरी तो सिर्फ़ एक बहाना है,
अस्ल मक्सद तो तुझे रिजाना है।

तो यह अवोर्ड, यह औपचारिकताएं यह तो ठीक है, लेकिन हम सबने मिलकर के 'सद्भावना अवोर्ड' द्वारा आदरणीया बहन शरीफाबहन और आदरणीया बहन शबनमबहन और भैया आपकी हमने वंदना की। सरस्वती की मूर्ति हो, न हो कहीं भी हम वंदन करते हैं। बीच में एक मूर्ति की बात आई तो किसी एक पर्व में व्यक्ति का नाम नहीं लिखा लेकिन कल मुझे एक चिट्ठी मिली उसमें लिखा कि बापू, आप इतने व्यापक है, इतने विशाल विचार रखते हैं तो यहां मूर्ति न रखी होती तो? सद्भावना पर्व में आये हो! मैं जब यहां आता हूं, श्रद्धा हो न हो, सिर झुकाता हूं। श्वेत मूर्ति अच्छी है। मैं जब आता हूं सिर झुकाता क्योंकि मूर्ति को सिर झुकाने में एक फायदा होता है कि उसको वंदन करने के बाद, वंदन कबूलने के बाद मूर्ति निंदा नहीं करती। हम लोग तो वंदन कबूल भी करते हैं और पीछे से निंदा भी करते हैं! इसलिए मूर्ति ज्यादा बहतर है। और मैं कुछ गाकर सुनाना चाहता हूं शबनम बहन।

तू निशाने बे निशान है, तू बहारे शरमिंदगी है।
तुझे देखना मेरी इबादत और तेरी याद बंदगी है।

हे परवरदिगार, तू आकार भी है और निराकार भी है। तो मैं आप-से एक बात यह कहना चाहता हूं कि यहां एक बहाना बनाकर के आपकी वंदना की। और मूर्ति की जब हम वंदना करते हैं तब मूर्ति खुश होती है कि नहीं, पता नहीं चलता। लेकिन वंदन करनेवाले जरूर प्रसन्न हो जाते हैं। तो शबनमबहन, शरीफ़ाबहन, आपकी दिल की बातें आपके वचनों से और आपके आंसूओं से हमने समझ ली। लेकिन हमें यह सलाम करने का बहुत आनंद आया। इसलिए हम सब आपके बहुत-बहुत ऋणी है, आपके कर्जे में है कि आपने हमारी वंदना कबूल की। मूर्तियां कहां कुछ बोलती है? कम से कम आप बोलो तो सही। मूर्ति कहां रोती है? चमत्कारों में रोती है। लेकिन यहां मूर्तियां रोई। यहां मूर्तियां बोली। क्या समय था जब -

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।
एहि भांति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानि पूजि पुनि पुनि मुदित मंदिर चली।।

अब इन्सान को चाहिए रोता हुआ ईश्वर। 'रामचरित मानस' को लोगों बिना पढ़े, बिना देखे जिसने उसके पृष्ठ नहीं देखे हैं वो लोग उसकी आलोचना करते हैं! उन लोगों को मैं निमंत्रित करना चाहता हूं; सद्भावना के साथ, शील के साथ निमंत्रित करना चाहता हूं। जब तक राम चत्रभुज रूप में कौशल्या के भवन में प्रकट हुए तब तक कौशल्या प्रसन्न नहीं हुई। इतना ही नहीं साहब! कौशल्या ने मुंह मोड़ लिया था और चतुर्भुज ने कहा था, मैं आपके घर आया और तू मुंह मोड रही है? कौशल्या ने कहा, आप आये, आपका स्वागत लेकिन मुझे यह रूप पसंद नहीं। मुझे ईश्वर चाहिए मनुष्य के रूप में। यह विचार बहुत पुराना है साहब! यह आदि विचार है। और 'रामचरित मानस' में लिखा है, भगवान राम चतुर्भुज मिटकर दो हाथवाले पुरुष बनकर खड़े हुए और फिर कौशल्या को कहा, अब आपको तसल्ली हो गई? तो कहा कि अभी तसल्ली नहीं हुई। तो? तुम रोओ। भगवान ने कहा कि मुझ पर कौन नौबत आई कि मैं रोऊं? बोले, तेरे पर नहीं आई है, लेकिन तेरी बनाई दुनिया पर बहुत आई है, बहुत आई है, इसलिए तू रो। हमारा भावनगर का एक शायर नाज़िर देखैया; जिल्ला पंचायत में बिलकुल कारकून की नौकरी करता था और बड़ा फकीर जैसा आदमी था! उसकी एक गज़ल है, वो कहता है कि -

जीवन जेवुं जीवन तुज हाथमां अर्पण करी देशुं।
अमारी जेम अमने एक पळ तुं करगरी तो जो।

हे ईश्वर, एक बार तू रोकर के तो दिखा! बहु सरस एणे ईश्वरने पडकार्यो छे के मारी जेम तुं एक वार आंसु तो पाड! मूर्ति रोती नहीं, मूर्ति मुस्कुराती नहीं। भाव अर्पण करते हैं और अपनेआप हम उसकी महसूसी करते हैं। लेकिन यहां मूर्ति बोली, मूर्ति रोई इसका मतलब हमारा सलाम, हमारी वंदना कबूली। हमारी बंदगी स्वीकृत हुई। तो ऐसे पवित्र वातावरण में, सद्भावपूर्ण वातावरण में जब हम इकट्ठे हुए हैं तब मैं शंकराचार्य से शुरू करूं।

शंकराचार्य जगद्गुरु के पास एक प्रश्न आया कि 'संवाद किम् भविष्यति?' संवाद-संवादिता, संवाद-संवादिता की चर्चा बहुत दिल से यहां हो रही है; सालों से हो रही है कि संवादिता हो, संवाद प्रकट हो। जगद्गुरु शंकराचार्य के सामने यह प्रश्न आया 'संवाद किम् भविष्यति?' और जगद्गुरु शंकराचार्य का जवाब था, 'संवाद बोधात् भविष्यति।' संवाद का जन्म बोध से होता है; विरोध से नहीं होगा। संवाद यदि समाज में प्रकट करना है, तो बोध से होगा। समाज वर्ग-वर्ग में कितने हिस्से में बटे हुए हैं? कल आदरणीय एडमिरल्स दादा जब बैठे थे वो शिव की चर्चा कर रहे थे मेरे पास कि यह सेतुबंध के बारे में आप क्या कहते हैं? साउथ से आये थे। मैंने कहा, 'रामचरित मानस' के आधार पर तो मैं यही कहूंगा, राम एक विचार है साहब! राम एक सद्वृत्ति, सद्विचार, सद्भावना का विग्रह है। उसको केवल संकीर्णता से न बांधा जाए। आप 'रामचरित मानस' खोलकर देखिए, राम-रावण विजय बाद जानकी को पुष्पक विमान में बिठाकर रामजी जा रहे हैं, विमान थोड़ा नीचे लाया गया ताकि रणमैदान रामजानकी को दिखा पाए और वो पर्टिक्यूलर जो पोईन्ट है, जगह है, स्थान है उसी तरफ विमान से ऊंगली करके राम कहते हैं, सीता, आप रण देखो; यहां लछिमन ने इन्द्रजित का नाश किया। राम कहते हैं, यहां फलां ने फलां को मारा, फलां ने फलां को मारा। इतने में कहते-कहते जहां रावण और कुंभकर्ण को निर्वाण दिया गया वो जगह आई, विमान ओर नीचे लाया गया और राम ने कहा, जानकी, यहां रावण और कुंभकर्ण को मारा गया। कर्तापना का लोप।

हुं करुं हुं करुं, ए ज अज्ञानता, शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे;
सृष्टि मंडाण छे सर्व एणी पेरे, जोगी जोगेश्वरा को'क जाणे।

आ आपणो नरसिंह मेहतो गाय। तो यहां लक्ष्मण ने फलां को मारा, फलां ने फलां को मारा। लेकिन रावण और कुंभकर्ण को निर्वाण दिया वो जगह आई तो राम कहते हैं, यहां वो मारे गये। सीता ने चुटकी भरके कहा कि लक्ष्मण ने फलां को मारा, फलां ने फलां को मारा; रावण, कुंभकर्ण मारे गये तो आपने मेरे लिए किया क्या? स्वाभाविक प्रश्न था, आपने मेरे लिए क्या किया? भगवान ने बहुत सुंदर, सटीक जवाब दिया। आप 'मानस' को खोलकर कभी पढ़िये। राम कहते हैं, मैंने एक ही काम किया जानकी, मेरा अवतारकार्य का एक ही हेतु है और वो है -

इहां सेतु बाँध्यो अरु थापेउँ सुख धाम।

मैंने यहां सेतु बांधा; वहां राम कहते हैं, मैंने जो काम किया वो सेतु बांधने का काम किया। मैंने सबको जोड़ने का काम

किया। कल्याणकारी शिव विचार में मैंने सबको यहां जोड़ा। हम वही सेवाकार्य के लिए इकट्ठे होते हैं। शंकराचार्य कहते हैं, संवाद कैसे प्रकट होता है? 'बोधात्', बोध से, विरोध से नहीं होगा। विरोध से ऊर्जा खत्म होती जा रही है। कितनी ऊर्जा? यद्यपि 'बोध' शब्द भारी है। 'बोध' शब्द वो बौद्धकालीन, उपनिषदीय काल के 'बोध' शब्द का जिक्र नहीं करना है। बोध मानी समझ, शीलवान समझ। उससे पैदा होता है संवाद। ऐसा आदि गुरु शंकराचार्य कहते हैं। आपणे गुजरातीमां कहीए छीए, 'क्यां गया हता यात्रा करवा?' तो कहीए, सेतुबंध रामेश्वर। इसका मतलब हुआ, राम का ईश्वर कौन? सेतुबंध। राम का ईश्वर सेतुबंध है। वह पर्टिक्यूलर शिवलिंग नहीं; एक रामनाम का मंदिर नहीं। उसकी महिमा है, है, है। लेकिन राम का ईश्वर है सेतुबंध। जोड़ना, सबको परस्पर प्रीत, सबको परस्पर मिलाना।

यह जोड़ने की प्रक्रिया है। शंकराचार्य इसलिए मुझे याद आ रहे हैं। 'कैलास गुरुकुल' का यह 'शंकराचार्य संवादगृह' उसमें शंकर की बात से ही शुरू करूं। संवाद कैसे पैदा होगा? तो बोले, 'बोधात्।' हमारी और आपकी सद् समझ से संवाद पैदा होगा, इससे पहले नहीं। लेकिन आप कहे, यह पहले वैदिक अद्वैतवादी, परम दार्शनिक अथवा तो एक कोम के आचार्य है; ऐसा यहां आप यदि सोच ले तो मैं दूसरा दृष्टांत देना चाहता हूं। मैं सेतुबंध करना चाहता हूं।

दूसरा दृष्टांत है निझामुद्दीन ओलिया और अमीर खुशरो। सायंकाल की नमाज पूरी हुई है। इरान, अरबस्तान की आग्रा की गली में मिलनेवाले लोबान की खुश्बू नहीं महक रही थी। केवल एतबार-भरोसे की महक पूरे परिसर को खुश्बू से भर रही थी। उसी समय रोज नियम के अनुसार घूटने टेककर अमीर खुशरो ने अपने पीर को, अपने दाता को सलाम करते हुए कहा, बाबा, एक प्रश्न पूछुं? बोले, क्या? परस्पर संवाद कैसे हो? क्योंकि हमारे यहां कभी-कभी गुरु-शिष्य के बीच में भी संवाद का अभाव हो गया है और विवाद पैदा हुए हैं! बीसवीं सदी में तो कई घटनाएं हमने देखी है कि गुरु-शिष्य कोर्ट में गये! कोर्ट में गये नहीं, एक-दूसरे की हत्या कर गये! यह पता था पूर्व ऋषियों को इसलिए कह गये-

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

हम गुरु और शिष्य में भी संवाद हो। पति-पत्नी में संवाद हो, भाई-भाई में संवाद हो।

हमारे महुवा में हिन्दु-मुस्लिम की तकरीर होती है। प्रतिवर्ष कई मौलाने आते हैं देश-विदेश से। मैं तो होता ही हूं। उसका नाम रखते हैं 'कोमी-एकता संमेलन।' मैंने कहा, यह 'कोमी' शब्द निकाल दो ना यार! यह शब्द रखकर बार-बार क्यों याद दिलाते हो? यह गोधरा-गोधरा लाकर बार-बार स्मरण क्यों कराते हो? बंद करो यह दुर्गंध! जो हो गया सो हो गया। हमें अब क्या करना है? वो ही बात? हम सद्भावना के लिए बैठे हैं। लोगों के मन में क्यों उसका स्फुरन करे? जिसने किया, जो हुआ, अल्लाह जाने! परमात्मा सबको उनके कर्म का फल देते हैं।

एक सद्भावना का मंदिर रचे। कब तक पोस्टमोटर्म करते रहेंगे? कब तक? यह मेरा जवाब नहीं है साहब! अमीर खुशरो को दिया हुआ जवाब है निझामुद्दीन का कि बाबा, गुरु शिष्य के बीच संवाद कैसे प्रगट हो, गुफ्तगू कैसे प्रकट हो, रूबरू चर्चा कैसे प्रगट हो? सद्भावना के साथ बातचीत-प्रश्नोत्तरी कैसे प्रगट हो? 'गीता' पढ़ते हैं। 'श्रीकृष्णार्जुन संवादे'; प्रत्येक अध्याय में, 'श्रीकृष्णार्जुन संवादे', 'श्रीकृष्णार्जुन संवादे।' आप 'रामायण' पढ़ो, संवाद, संवाद, संवाद। संवाद की बहुत जरूरत है। विवाद बोध से प्रगट नहीं होता। जहां बोध है वहां विरोध नहीं और जहां भी विरोध है, जितना भी विरोध है साधक व्यक्ति समझ ले, वहां बोध का अभाव है। हम बोध से संवाद प्रगट करे। हम अमीर खुशरो के जवाब में संवाद प्रगट करे। निझामुद्दीन ने कहा, बेटा, संवाद खुश्बू से पैदा होगा। यह मेरा जवाब नहीं है। संवाद एक महक से प्रगट होगा। संवाद बदबू से और अशुभ से नहीं प्रगट होगा। एक घटक के लिए, एक समाज के लिए, एक परिवार के लिए, एक व्यक्ति के लिए, एक कोम के लिए, एक जाति के लिए, एक देश के लिए, परस्पर सूग रहेगी तब तक संवाद नहीं होगा। निझामुद्दीन जैसा एक पीर कहता है, संवाद प्रगट होगा एक खुश्बू से। पाकिस्तानी शायराना परवीन शाकिर की बहुत प्रसिद्ध ग़ज़ल है -

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझ पे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

जो मुझे संवाद से दूर ले जाए, विवाद में संमिलित कर दे, मुझे उस राह पर चलना ही नहीं। तो जगद्गुरु कहते हैं, 'संवाद बोधात् भविष्यति।' निझामुद्दीन कहते हैं, संवाद का जन्म होता है खुश्बू से। अब चलिए तर्की, जलालुद्दीन रूमी का चरण चूमे, घूंटने टेके, उसको आदाब करे। और जलालुद्दीन रूमी सूफी संत; मुझे तो आप सब दुआ देना, मुझे रुमी के स्मरण में तर्की जाकर एक कथा सुनानी है। मैं जानेवाला हूं। अभी मैं जानेवाला था एक-दो महिने में जुन-जुलाई में लेकिन वहां की परिस्थिति बदलती है। जैसे पाकिस्तान जाना है

लेकिन बार-बार परिस्थिति बदलती है इसलिए जोग-लगन-ग्रह-बार-तिथि अभी नहीं हुई। लेकिन मेरा मन तो पहुंचा हुआ है सब जगह। मन का सद्भाव तो पहुंचा हुआ है सब जगह। तो मुझे तर्की जाना है। मनोरथ तो करता रहता हूं। वो पूरा करे; न करे तो उसकी इज्जत का सवाल है! मैंने कहां मेरे लिए मनोरथ किये हैं? मैंने तो विश्वमंगल के लिए, सेतुबंध के लिए किये हैं। बावा के मनोरथ पूरे हो न हो, हनुमान जाने या रहेमान जाने! मैं दोनों को जोड़ता हूं। मेरा कोई शब्द लालित्य नहीं है। मैं विद्वान नहीं हूं, जो डंकेशभाई ने लिखा। और हकीकत लिखी है। हूं तो हूं! दीप्ति मिश्रा कहती है, 'है तो है!' तीन बार फेईल है यार! ये तो किस्मत कि मेरे पर लोग पीएच.डी. करते हैं! गज़ब है! इससे बेहतर कलियुग क्या हो सकता है? जो आदमी मेट्रिक में तीन बार फेइल है उस पर लोग पीएच.डी. कर रहे हैं!

तो बाप! मैं जाऊंगा वहीं अल्लाह ने मेरी उम्मीद पूरी की तो। मैं मनोरथ करता रहता हूं। कोई हेतु नहीं है। मेरी व्यासपीठ से समाज में जो कुछ काम हो रहा है। जो लोगों ने बीस साल पहले शुरू किया; किसी ने दस साल पहले शुरू किया; किसी ने तीस साल पहले शुरू किया; वो काम मेरी व्यासपीठ पच्चीस साल पहले से ओलरेडी कर रही है। आप भी मेरे साथ जरा जुड़ते जाओ, 'संगच्छध्वम्।' लेकिन कथा की बात आती है तो सूग! यह क्या है? बिना खुश्बू संवाद नहीं हो सकता। कथा होगी कथा! इतनी सूग क्यों? और सूग में संवाद होगा? दर्शक दादा कहेता, आ भेदनी भींतने भांगवी पडशे। मैं तो अकेला निकला हूं, जैसे शबनमबहन निकली है, जैसे शरीफाबहन निकली है। बैशाखी से ज्यादा यात्रा नहीं हो सकती। बैशाखी से न काबा पहुंचा जाता है, न कैलास पहुंचा जाता है।

तो मेरे भाई-बहन, आओ, हम सब साथ मिलकर काम करे सद्भाव का, समरसता का। तो मैं रहेमान और हनुमान को जोड़ता हूं। आप मेरे है तो में अपनी बात आपको कर सकता हूं। मेरे गांव के नाथालाल, उसको मैंने पूछा कि तू कभी हज पढ़ने गया कि नहीं भाई? जब भी मुझे मिले कहे, बापू, जयसीयाराम; कैसे हो? मैं कहूं, ठीक है। क्या है हालचाल? हज पढ़ने जा; क्यों नहीं जाता? अरे बापू, हम गरीब मुसलमान हज पढ़ने कैसे जाए? मैंने कहा, यार मुझ पर तू रहेमत कर क्या? मैं कोई व्यवस्था में निमित्त बनूं कि तू और तेरी बीबी हज पढ़ने जाए। तो मुझे कहे, बापू, आप मुझे द्वारका ले जाओ तो बात खतम!

कोमी एकता, कोमी एकता; कोमी का स्मरण बार-बार क्यों दिलाते हो हमको? 'कोमी एकता' शब्द होल्डिंग्स से निकाल दिया है। हमारा यह संवाद है। कोम की क्या बात है? बार-बार कोम की क्या याद देते हो? मिटा दो इस बात को। इस बार तो मैंने प्रार्थना की मेरे मुस्लिम भाईयों को, तलगाजरडा इतना निमित्त बना है, तो क्यों न एक गुजरात लेवल पर, एक भारतीय लेवल पर 'यादे हुसैन अवोर्ड' दिया जाए यादे हुसैन नाम पर? जिस मुस्लिमभाई ने, मौलाना हो या कोई भी हो जिसने इतनी समरसता का और इतना सद्भावपूर्ण काम किया हो। एक गुजरात लेवल पर 'यादे हुसैन अवोर्ड' दो और एक भारत लेवल पर 'यादे हुसैन अवोर्ड' दो। जिसने इतना परस्पर प्रेम और संवाद का काम निर्दंभ और नीडरता से किया हो। यह मेरी बात उसने कबूल की है।

तो मैंने नाथाभाई को कहा कि तुम जाओना? तो कहे, बापू, तीन साल में नंबर लगता है जो लाईन में जाए तो। मैंने कहा, ओर कोई रास्ता है? तो मैंने महेंदीबापू को बुलाया। मैंने कहा, यह आपका विषय है; कोई रास्ता हो तो बताये। तो कहे, हा, स्पेशियल क्वोटा में जा सकते हैं। मैंने कहा, स्पेशियल क्वोटा में क्या खर्च होगा? नाथाभाई बड़े उदार; मुझे कहा, बापू, तीन साल तो तीन साल। आपने बात कही तो हज हो गई। हमने उसकी व्यवस्था की। मौलाना लोग इकठ्ठे हुए तलगाजरडा में उसके सन्मान के लिए। और सब स्वाभाविक है कहे, बापू ने बहुत बड़ा काम किया। बापू हमारे इस भाई को हज पढ़ने भेज रहे हैं। तो य सब स्वाभाविक है, आदर व्यक्त करते हैं। तो जब तक बोले, मैं क्या कहूं? फिर मैंने बोला तो कहा कि नाथाभाई, तुझे मोरारिबापू हज पढ़ने नहीं भेज रहा है। मेरा हनुमान तुझे रहेमान के पास भेज रहा है। यह जोड़ना पड़ेगा। यह संवाद होगा खुश्बू से, सूग से नहीं। सुगंध से। मेरा जवाब नहीं है, निझामुद्दीन ओलिया का जवाब है।

तर्की की बात मैं कह रहा था। तर्की के यह परम सूफी संत जल्लालुद्दीन रूमी से पूछा शागीर्द और मुर्शीद ये दोनों के बीच आत्मीयता कैसे प्रकट हो? जिश्म से तो हम मिलते हैं, रुह से मिलना कैसे हो? पूछा अपने गुरु से शागीर्द और मुर्शीद के बीच संवादिता कैसे प्रगट हो? मौन संवाद या मुखर संवाद, कोई भी संवाद। मुखरता वो मजबूरी है वक्ता की। यदि समाज मौन समझ लेता। ओशो रजनीश ने भी कभी कहा था कि मेरा मौन यदि समझ लेते तो मुझे इतना बोलना नहीं पड़ता। और अर्जुन भी कृष्ण का, योगेश्वर का मौन समझ लेता तो कृष्ण को मध्ये महाभारतम् सात सौ श्लोक नहीं बोलने पड़ते। लेकिन समाज मौन नहीं समझ पाया तो बुद्धपुरुष मुखर होते हैं। आप बताइए, आत्मीयता कैसे बढ़े? तब जलालुद्दीन

रुमी के गुरु ने कहा, बेटा, आत्मीयता केवल और केवल महोब्बत से बढ़ेगी। संवाद बढ़ेगा प्रेम से। और यहां सभी का सूर यह रहा। प्रेम-महोब्बत, प्रेम-महोब्बत, प्रेम-महोब्बत। कबीर ने क्या कहा? क्या संदेश रहा? ढाई अक्षर केवल। केवल ढाई अक्षर में कबीर की पूरी फिलसूफी समाप्त।

ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई।

तो प्रेम और महोब्बत। यद्यपि सत्य, प्रेम और करुणा की बातें विनोबा ने कही है। बाद में मैंने जाना कि विनोबाजी लिखते रहते थे कागज़ पर सत्य-प्रेम-करुणा। लेकिन 'रामचरित मानस' की शरण लेकर मैं मेरी यात्रा पर निकला तो मुझे 'रामचरित मानस' में मुझे सत्य-प्रेम-करुणा के सूत्र प्राप्त हुए और विनोबाजी पहले से यह कह रहे थे यह बात जब मैंने सुनी तो मुझे बहुत सपोर्ट मिला कि एक महामुनि विनोबा भी यही बात किया करते थे। 'रामचरित मानस' जब पूरा होता है तब यही संदेश है, सत्य-प्रेम-करुणा। सत्य का कोई मज़हब नहीं होता, प्रेम का कोई मज़हब नहीं होता, करुणा का कोई मज़हब नहीं होता, यह स्पष्ट है। तुलसी कहते हैं -

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।
रामहि सुमिरिअ गाईअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

राम का सिमरन यानी सत्य का सिमरन। आदमी कब गाये? शबनमबहन क्या गाती है? प्रेम के बिना हो ही नहीं सकता। आपने कभी सुना है, ज्ञानी ने कभी गाया? ज्ञानी लगभग बेसूरे होते हैं! मुझे पूछो। मैंने बड़े-बड़े वेदांतियों को देखे हैं; बड़े-बड़े महामंडलेश्वरों के पास बैठा हूं; उसकी वंदना की है। लेकिन सूर में असुर तो न कहूं, लेकिन बेसूर जरूर होते हैं। ज्ञान में सूर कहां? सूर तो प्रेम में होता है। और फिल्म की पंक्ति है -

हर दिल जो प्यार करेगा वो गाना गाएगा।
दीवाना सेंकडों में पहचाना जाएगा।

तो प्रेमी गायेगा। राम को स्मरो यानी सत्य का सिमरन। राम को गाओ यानी प्रेम और 'संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि।' ऐसे सद्भावना पर्व हो जहां शुभ बातें होती है, हमारे लाभ की बात नहीं। समाज के शुभ की बातें होती हो। लाभ और शुभ का अंतर समझिए। मेरा अनुभव है। कई लोग जुड़े हैं व्यासपीठ के साथ। अपना-अपना लाभ पूरा हो गया फिर कहां गये! अमरिका चले गये! क्योंकि उसको अपने लाभ की पड़ी थी, समाज के शुभ की नहीं पड़ी थी। और मैं बिका हूं शुभ के लिए। 'प्रेमाम्बुपुरम् शुभम्।' मेरे तुलसी ने 'रामचरित मानस' का सार लिखते हुए लिखा। कथा, उसका अर्क है? 'प्रेमाम्बुरपूरम् शुभम्।'

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।

छेल्लो 'मानवाः' मानव आवे छे। तुलसी का अंतिम शब्द है साहब! ईश्वर नहीं, मानव। मैं फिर एक बार धर्मशीलों को, कर्मशीलों को प्रार्थना करूं कि 'रामचरित मानस' एक बार उपेक्षा भाव से भी पढ़ो। उसमें लिखा है, आखिरी शब्द है 'रामचरित मानस' का 'मानवाः।' मानव पोंखावो जोईए। समाजमां मानवीना रूपमां मने ने तमने ईश्वर खपवो जोईए। आ ईश्वर स्वर्गमां बेठो छे। ईश्वर हाथवगो नथी, मानव हाथवगो छे। तो राम का सिमरन मानी सत् का सिमरन; राम को गाना यानी प्रेम और 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।'

यहां 'सद्भावना पर्व' में इतने सद्भावना रखनेवाले भाई-बहन, संजय के साथ जुड़े भाई-बहन वो भी आते ही रहते हैं। उसमें भी संख्या बढ़ती ही जाती है। ओर लोग भी आते हैं। क्योंकि एक तो कुदरत की करुणा है कि कम से कम सुनने में तो रुचि जगी! सुननेवाला कभी न कभी कुछ करेगा। कम से कम लोग सुनने आते हैं। वर्ना हमारे महुवावाले आते नहीं है! तो इतना 'अस्मिता पर्व' जैसा साहित्य संमेलन हो; महुवा की हाईस्कूल, कोलेज को कितना बिना पढ़ाई सब कुछ मिल जाता है, लेकिन आते ही नही! पण हवे सारुं थतुं जाय छे के लोको आवे छे, भले जमवा आवे छे! मैं तो उपनिषद का विचार करता हूं। हर जगह से संवाद खोजता हूं। नेगेटिव क्यों सोचूं? उपनिषद कहते हैं, तुम्हारी थाली में कोई रोटी परोसे तो वो अन्न नहीं है। 'अन्नम् ब्रह्मेति व्यजानात्।' थाली में वो ब्रह्म परोस रहा है। यह तो ब्रह्म वितरण होता है। तो लोग सुनने लगे हैं। होल भर जाता है। 'अस्मिता पर्व' में तो नीचे भी स्क्रीन रखना पड़ता है। मैं यह भी देख रहा हूं कि 'सद्भावना पर्व' के लिए लोगों की रुचि बढ़ी है। लेकिन आखिर में इतना ही कहूं, संवादिता-सद्भावनापूर्ण संवादिता बोध से जन्म लेती है।-शंकराचार्य। संवादितापूर्ण सद्भावना महक से प्रगट होगी, सूग से नहीं। और सद्भावनापूर्वक संवाद प्रगट होगा प्यार और महोब्बत से।

मेरे जनाजे पर लिख देना कि
महोब्बत करनेवाला जा रहा है।

(सद्भावना पर्व-८ के अवसर पर जगद्गुरु आदि शंकराचार्य सभागृह, कैलास गुरुकुल, महुवा में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ३-६-२०१७)

सांध्य-प्रस्तुति

॥ जय सीयाराम ॥